सूची

कहानी	लेखक

—श्रीपतराय, सरस्वती प्रेस बनारस।

भूमिका

आधुनिक साहित्य में गद्य की प्रधानता है और उस गद्य में भी 'आख्यान' आख्यान या कथानक-प्रधान साहित्य में भी, जितना बोल-बाला कहानी उतना और किसी का नहीं। आधुनिक युग के मनुष्य को इतना अव- नहीं कि वह लम्बे-लम्बे उपन्यास पढ सके। अतः पाठकों की बहु- को कहानी की मांग रहती है। वर्तमान-युग उपन्यासों और कहानियों ग है।

कहानी की परिभाषा—कहानी है क्या ? इसकी परिभाषा क्या होगी ? ाषा उतनी आसान नहीं। साधारण रूप से काम चलाने के लिए मिस्टर र की परिभाषा कुछ काम दे सकती है—आप कहते हैं—It is a es of crises, relative to each other and bringing about a iax अर्थात् कहानी परस्पर सम्बद्ध महत्वपूर्ण घटनाओं का क्रम है जो परिणाम पर पहुँचाती है। साहित्य मानव-जीवन का चित्र माना गया ो कहानी को हम मानव-जीवन की एक झलक कह सकते हैं।

वर्तमान युग में कहानीकला ने काफी उन्नति कर ली है, और हम नहीं सकते अभी उसकी चरम सीमा कहाँ होगी। पुराने जमाने की आख्या- ा और आजकल की 'गल्प' या कहानी में बहुत अन्तर हो गया है। टर ब्रेण्डर मैथ्यु ने Philosophy of Short Story पर लिखते समय स्थान पर लिखा है—

'A true short story is something other and something re than mere short story, \ is short A true short ory differs from the novel chiefly in its essentials—unity expression In a far more exact and precise use of words short story has unity which a novel cannot have A ort story deals with a single character or a series of

emotions called forth by a single situation The short story must be an organic whole'

कहानी की सफलता—आधुनिक कहानी मे सर्वांगपूर्णता और चुस्ती बहुत आवश्यक वस्तु है। मिस्टर एडगर एलन पो—इसे Totality कहते हैं। कहानी ऐसी होनी चाहिए जिसे पढने के पश्चात् पाठकों को किसी कमी का अनुभव न हो। एक स्थान पर मिस्टर Poe अपने विचार प्रकट करते हुए लिखते हैं—

'In the whole composition there should be no wo[illegible] written of which the tendency, direct or indirect is no[illegible] the one pre-established design The idea of the tale is presented unblemished, because undisturbed, is an end unattainable by the novel. Undue brevity is just as exceptionable here, as in a poem, but undue length yet more to be avoided'

कहानी और उपन्यास—कहानी और उपन्यास में केवल 'विस्तार' ही का अन्तर नहीं है, वरन् दोनों दो भिन्न वस्तुएँ हैं। दोनों के उद्देश्य और प्रकृति में महान अन्तर है। साधारणतः कथानक-साहित्य के तीन भेद उपलब्ध हैं। उपन्यास, लघु उपन्यास और कहानी। उपन्यास का युग पाश्चात्य देशों में जा रहा है। मिस्टर किप्लिंग ने इसी हेतु कहा था--'The three volume novel is extinct'

—अतः लघु उपन्यासों का प्रचार बढ़ रहा है। दोनों में केवल 'आकार' का अन्तर नहीं है। लघु उपन्यास में कला का अधिक परिपक्व रूप मिलता है। एक आलोचक लिखता है—Modern tendency is to write short novels Now the Novelette is more artistic, condensed with extensive narration and lees extensive view of men and matters

कहानी का विस्तार—लघु उपन्यासों की अपेक्षा कहानी की कला और परिप[illegible]। उसमें और भी चुस्ती और सक्षेप में सर्वाङ्गपूर्णता होनी चाहिए।

आकार वा विस्तार की दृष्टि से कहानियों के बारे में कोई निश्चित सिद्धान्त नहीं बनाया जा सकता। परन्तु कहानी का विस्तार उतना ही उचित समझा जाता है कि उसे एक बैठक में समाप्त किया जा सके। पाश्चात्य आलोचकों ने 'संक्षेप' पर बहुत जोर नहीं दिया है जितना कि 'एक दौर' पर। यदि पाठक बिना सम्पूर्ण कहानी पढ़े उठता नहीं और उसकी बैठक मन उबानेवाली न हुई तो साधारणतः आध घण्टे तक की कहानी अनुचित न मानी जायगी। परन्तु यह 'समय' भी अपने अपने देश के अनुसार होगा। पाश्चात्य देश में जहाँ समय बहुत मँहगी चीज है, वहाँ पन्द्रह मिनट से अधिक समय लेनेवाली कहानियाँ बहुत लम्बी समझी जाती हैं।

कहानी की सीमा—कहानी की सफलता 'कहने' पर अधिक निर्भर है। यदि लेखक कहानी के आरम्भ से अन्त तक पाठकों को अपने साथ रख सका और उसने कहानी के उद्देश्य और परिणाम में एकता स्थापित कर दी तो उसकी कहानी साहित्यिक दृष्टि से भी अच्छी कही जायगी। उपन्यास और कहानी के तत्त्व प्रायः समान ही हैं, पर उपन्यासों की अपेक्षा छोटी कहानी लिखना अधिक कठिन है। उसमें अधिक कुशलता की जरूरत है। उपन्यास में मैदान विस्तृत है। कहानी का दायरा नपा-तुला है।

कहानी का तत्त्व—कहानी में 'वस्तु' वा प्लाट होना परमावश्यक है। बिना प्लाट के कहानी नहीं खड़ी होती। इस हेतु 'पात्र' भी आवश्यक हैं, जिसके आचरणों से प्लाट आगे बढ़ता है। इन दोनों प्लाट और पात्र के अतिरिक्त कथोपकथन, वातावरण, शैली, उद्योग आदि भी कहानी के जरूरी अङ्ग समझे जाते हैं। इन पर ध्यान रखने से कहानी अच्छी उतरती है।

कहानी का आरम्भ—कहानी का अध्ययन करते समय तथा उसकी आलोचनात्मक परीक्षा करते समय हमें सर्वप्रथम इस बात पर ध्यान रखना होता है कि कहानी का आरम्भ कैसा हुआ है। क्या प्रथम वाक्य से ही हमारा ध्यान कहानी के मुख्य अङ्ग की ओर आकर्षित होता है? आधुनिक युग में समय का मूल्य अधिक है, अवकाश का अभाव हर जगह है। अतः पाठक सीधे कहानी पर आना चाहता है। यदि लेखक आरम्भ में व्यर्थ भूमिका

बाँधता है तो यह कहानी का दोष समझा जायगा। हिन्दी कहानियों में अभी इस पर अधिक जोर नहीं दिया जाता।

कथावस्तु—कहानी की कथावस्तु वा प्लाट ऐसा होना चाहिए, जिसका विकास कहानी के आरम्भ से होकर अन्त तक हो और वह ऐसा स्वाभाविक हो जो हमें सन्तुष्ट कर सके। कहानी की कथावस्तु में सम्भव और असम्भव का प्रश्न उतना नहीं, जितना स्वाभाविक और अस्वाभाविक का है। कथानक का विकास ऐसा होना चाहिए कि पढ़नेवाले को वह अस्वाभाविक न प्रतीत हो।

कथोपकथन—कथोपकथन की आवश्यकता कहानियों में सजीवता और यथार्थता लाने के लिए पड़ती है। जब हम दो पात्रों को बातचीत करते सुनते हैं, हमे उनकी बातों में अधिक आनन्द मिलता है। उनकी बातचीत सुनकर हमारे मन में उनके चरित्र आदि के प्रति एक कल्पना उत्पन्न होती है और हम उन पात्रों मे अधिक दिलचस्पी लेने लगते हैं। यदि कहानी में कथोपकथन कम है वा बिलकुल नहीं है तो उसका चमत्कार नष्ट हो जाता है। कथोपकथन कहानी की जान है। इसके पात्र और प्लाट दोनो का सुन्दर विकास होता है। परन्तु कथोपकथन स्वाभाविक होना चाहिए, जिस प्रकार बातचीत करते समय केवल बातचीत सुनकर एक तीसरा व्यक्ति दो भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की बात समझता है, उनके लहजे, वाक्य-विन्यास आदि से उनके चरित्र की कल्पना कर लेता है, उसी प्रकार कहानी में भी कथोपकथन इतना स्वाभाविक होना चाहिए जिससे पात्रों के व्यक्तित्व का विकास न रुके। निर्जीव कथोपकथन वे होते हैं जिनमें दो आदमी बातचीत करते हुए दिखाये जाते हैं—दो व्यक्ति नहीं, सिर्फ़ दो 'मुँह' जो केवल बोलते हैं।

वातावरण—देश, काल, परिस्थिति—को वातावरण कहते हैं। यह हमारे कथानक का आरम्भ होता है, अन्त होता है [illegible] किसी वातावरण की निर्दोषता भी आवश्यक है। यदि इसमें कहीं कोई त्रुटि रह गयी तो सारा व्यापार उपहास्य प्रतीत होने लगेगा। जिस समय का, जिस स्थान, वा जिस परिस्थिति का उल्लेख कहानी में हो—उसे सच्चा, स्वाभाविक रहना चाहिए। वातावरण कहानी में इस प्रकार है जैसे दावत में पकवानों के रखने के बर्तन और भोजनशाला। हम [illegible] खाद्य-पदार्थों पर अधिक होगा—बर्तनों पर कम। परन्तु

खाद्य पदार्थों के अनुरूप ही पात्र भी होना चाहिए, भोजन का स्थान भी होना चाहिए। हम दावत के वक्त भोजनों से अपना ध्यान हटाकर भोजन-शाला वा वर्तनों पर कभी न जाने देंगे। हाँ, अज्ञात रूप से उनका प्रभाव हमारे मन पर पड़ेगा और हम बड़ी प्रसन्नता से भोजन करेंगे। इसी प्रकार कहानी में 'वातावरण' प्रधान लक्ष्य न होना चाहिए। प्राचीन हिन्दीकाव्य में 'प्रकृति' उद्दीपन के रूप में आती थी। कहानी में 'वातावरण' का उपयोग इस प्रकार होना चाहिए कि कथावस्तु के स्वाभाविक विकास में बाधा न पड़े, पर साथ ही-साथ उसका वर्णन आवश्यकता से अधिक न हो कि हम मुख्य कथा की ओर से ध्यान हटाकर 'वातावरण' की ओर आकृष्ट हों। कहानी में लम्बे-लम्बे प्रकृतिवर्णन, वा सविस्तार किसी स्थान का वर्णन अनावश्यक है। केवल 'विशदता' लेखक का उद्देश्य न होना चाहिए। यदि ऐसा होगा तो कहानी की सुन्दरता नष्ट हो जायगी।

पात्र—कहानी में पात्र उतना ही आवश्यक है, जितना उपन्यास में। परन्तु उपन्यास की तरह कहानी में बहुत-से पात्रों के लिए स्थान नहीं, अवसर भी नहीं। कहानी में अधिक पात्रों का होना कहानी की चुस्ती बिगाड़ देता है। हमारी संवेदना इतनी ओर बँट जाती है कि हम कहानी का मजा नहीं पाते। कहानी में दो-तीन से अधिक पात्रों का होना ठीक नहीं। मुख्य पात्र के चरित्र का आरम्भ—कहानी के आरम्भ में हो जाना चाहिए। हमारी संवेदना का प्रथम पात्र कहानी का नायक या प्रधान पात्र होना चाहिए, जिसमें हम बराबर उसके साथ अन्त तक रहें। जब कभी कहानी में 'प्रधान पात्र' बहुत बाद आता है, उस समय कहानी पढ़नेवालों को आरम्भ में आये हुए पात्र से अपनी सहानुभूति हटाकर दूसरे के साथ करनी पड़ती है। उससे कहानी का प्रभाव नष्ट हो जाता है। कहानी में मुख्य पात्र आरम्भ से अन्त तक रहना चाहिए और उसका चरित्र निरन्तर प्रकाश में आना चाहिए।

चरित्र-चित्रण—चरित्र-चित्रण के स्वाभाविक विकास के लिए कहानी में अवसर नहीं। उस हेतु तो उपन्यास ही उचित स्थान है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि कहानी में पात्रों का चरित्र-चित्रण हो ही नहीं, उपन्यास में जहाँ हम एक पात्र के चरित्र का क्रम-विकास देखते हैं—वहाँ कहानी में हम

उसके चरित्र की एक झलक देखते हैं। केवल एक अंश को देखकर ही हम पात्र के संपूर्ण चरित्र का अनुमान करते हैं—परन्तु लेखक की कल्पना में वह पात्र तथा उसका पूरा चरित्र जैसे वर्तमान रहता है—हमें वह कहानी में केवल एक झलक दिखलाता है—उसी झलक से हम संपूर्ण का अनुमान करते हैं। परन्तु वह झलक एक संपूर्ण और स्वाभाविक चरित्र का अंग होती है। कहानी के पात्रों के चरित्र के विकास के लिए उसमें पूरा अवसर नहीं है, पर उसके विकास की स्वाभाविक गति का परिचय किसी-न-किसी प्रकार पाठकों को मिलना चाहिए, अन्यथा वह पात्र असम्भव होगा और उसका चरित्र अस्वाभाविक होगा। मानव प्रकृति तथा मनोविज्ञान के सिद्धान्तों को न सन्तुष्ट करनेवाले चरित्र चित्रण कहानी को असफल बनाते हैं।

शैली—हम यह कह आये हैं कि कहानी का मजा कहने में है और कहने का तरीक़ा—हर आदमी का जुदा जुदा होता है। कला की सीमा नहीं और न कलाकार के लिए कोई निश्चित मार्ग निर्धारित किया जा सकता है। यह बतलाना बहुत कठिन है कि कहानी लिखी जाय तो ऐसे-ऐसे ही लिखी जाय। प्रत्येक लेखक की अपनी शैली होती है। परन्तु आलोचनात्मक दृष्टि से देखना यह है कि उक्त लेखक की शैली का प्रभाव हम पर क्या पड़ता है—उसकी शैली कहानी को कहाँ तक सफल बनाती है। कहानी के तीन मुख्य अंग हैं—आरंभ, प्रसार और अन्त। तीनों में सामंजस्य होना चाहिए। लिखते समय लेखक की भाषा, वाक्यविन्यास, उक्तियाँ आदि, सभी चमत्कार लाती हैं। कहानी की सफलता बहुत कुछ इन पर भी निर्भर है।

लेखन-प्रणाली—कहानी लिखने के अभी तक बहुत से तरीक़े देखे गये हैं, उनमें कुछ मुख्य ये हैं—

(१) वर्णनात्मक-प्रणाली वा ऐतिहासिक प्रणाली—इसमें लेखक एक तीसरा व्यक्ति होकर लिखता है। मानो वह इतिहास लिख रहा हो।

(२) आत्मचरित्र-प्रणाली—इसमें मानो लेखक स्वयं अपनी कथा कह रहा हो।

(३) पत्र-प्रणाली—कुछ पत्रों द्वारा समस्त घटना और कथा कही जा

(४) डायरी-प्रणाली—इसमें डायरी के पृष्ठों के बहाने सारी घटना वा कथा पाठकों पर प्रकट होती है।

कुछ लोग एक पाँचवीं प्रणाली का उल्लेख भी करते हैं—वह कथोपकथन प्रणाली है। परन्तु केवल बातचीत में कहानी अच्छी न होगी। इस तरह की कहानी बहुत ही कम देखने में आती है। प्रचलित प्रणाली में ऐतिहासिक और आत्म-चरित्र प्रणाली ही दो हैं। ये ही अधिकतर काम में आती हैं। कथोपकथन प्रणाली का उपयोग आजकल रेडियो में काम आवेगा। इसमें इसी प्रणाली द्वारा कहानी कहना संभव है। परन्तु ऐसी दशा में भी यह कहानी न होकर 'ड्रामा' अधिक होगा। कहानी कथोपकथन-प्रधान वस्तु नहीं वरन् कथोपकथन की आवश्यकता इसमें Dramatic touch देने के लिए होती है। इस प्रकार सक्षेप में और स्वाभाविक रूप में कहानी चलती है। कथोपकथन से कहानी में सजीवता आती है—यथार्थता का बोध होता है।

शीर्षक—कहानी का शीर्षक किसी उद्देश्य का सूचक होना चाहिए। शीर्षक की उपयुक्तता पर कहानी की सफलता बहुत कुछ निर्भर है। शीर्षक है क्या? जिस दृष्टिकोण से लेखक कहानी की रचना करता है, उसी मार्ग का द्वार मानों उस कहानी का शीर्षक है। यदि लेखक शीर्षक ठीक नहीं देता तो वह मानों अपनी कहानी की भूल-भुलैया का ठीक द्वार पाठकों को नहीं बतलाता। उसका फल यह होता है कि पाठक एक दूसरे मार्ग से प्रवेश कर इष्ट स्थान को बिना देखे ही लौट आते हैं और कहानी की विशेषता वे देख नहीं पाते। इसलिए शीर्षक ऐसा होना चाहिए जो कहानी की सांकेतिक कुञ्जी हो। इसी हेतु एक पाश्चात्य लेखक Donald Maconochie लिखता है—

'Keep the title in its proper proportion to the nature and interest of the story'

उद्देश्य—कहानी कहने और सुनने की वस्तु है। हम वही बात कहना और सुनना पसन्द करते हैं जो हमारे जीवन के निकट हो, जिसमें हमारी सहानुभूति हो। जिसका हमारे जीवन से किसी प्रकार भी सम्पर्क नहीं उसे हम कहना वा सुनना व्यर्थ समझेंगे। प्राचीन समय में ऐसी बहुत-सी कहानियाँ

लिखी गई, जिनका उद्देश्य जीवन की किसी न किसी समस्या पर प्रकाश डालना था। धीरे-धीरे कहानियों में 'शिक्षाप्रद' परिणाम रखने की परिपाटी चल निकली। आधुनिक युग में ज्ञान विकास अधिक जाग्रत है। हम किसी वस्तु को जानना चाहते हैं—क्यों? केवल जानने के लिए। अतः अब इस युग में कहानी पर यह प्रतिबन्ध लगाना व्यर्थ है। कहानी की परीक्षा इस दृष्टि से होगी कि उसने हमारा मनोरंजन किया वा नहीं। उसे पढ़ते समय हम अपने को भूल सके वा नहीं। यदि हाँ, तो कहानी की सफलता निर्विवाद है।

आधुनिक युग का आलोचक कहता है—कहानी-लेखक का कर्तव्य उपदेशक होना नहीं। उसका फ़र्ज़ यह है कि कहानी अधिक से-अधिक लोगों को प्रसन्न करे। कहानी में शिक्षाप्रद परिणाम न हो, इसका अर्थ यह नहीं कि कहानी उद्देश्यहीन होगी। लेखक जब किसी कहानी की सृष्टि करता है तो वह अपने प्लाट, पात्र आदि का नियन्त्रण अपने इच्छानुसार करता है। उसकी अपनी इच्छा में उसकी आत्मा का हाथ रहता है—यही उसका अपनापन है—उसकी मौलिकता है। उसी अपनेपन के कारण उसका अपना निजी दृष्टिकोण होता है। यही दृष्टिकोण उस कहानी का उद्देश्य निर्धारित करता है। कभी कभी कहानी-लेखक केवल घटनाओं के क्रम, पात्रों के आचरण और कथोपकथन के बहाने अपना उद्देश्य प्रकट करता है, कभी-कभी वह अन्त में स्पष्ट कह देता है। स्पष्ट कहने से अधिक अच्छा न कहकर केवल संकेत मात्र देना वा ऐसी परिस्थिति की सृष्टि करना जिसमें एक केवल वही परिणाम निकले, जिसे लेखक चाहता है—ऐसा करना अधिक कलात्मक होता है।

कहानियों के भेद—लेखक के अपने लक्ष्य के अनुसार तथा प्लाट के अनुसार कहानी के अनेक भेद होते हैं। पहले तो सुखान्त और दुःखान्त मुख्य भेद होंगे। जिस कहानी के अन्त में किसी उद्देश्य की प्राप्ति होती है वह सुखान्त होगी। इसके विपरीत यदि हुआ तो दुःखान्त। दुःखान्त का यह अर्थ नहीं कि अन्त में मृत्यु हुई वा कोई दुःख आ पड़ा, वरन् यह कि 'फल' की प्राप्ति नहीं हुई। किसी समय जब अधिकतर कहानियाँ 'प्रेमगाथा' के रूप में [illegible] उस समय 'संयोगान्त' और 'वियोगान्त' रूप कहा जाता था

इस युग में कहानियों की कथावस्तु केवल 'प्रेम' नहीं वरन् जीवन की समस्त समस्याएँ हैं ! अतः अब सुखान्त या दु:खान्त ही उपयुक्त अन्त होंगे।

कुछ कहानियों का उद्देश्य केवल पाठकों को आदि से अन्त तक लोमहर्षक घटनाओं में उलझाये रखना और एक के बाद दूसरा रहस्योद्घाटन करते रहना है। ऐसी कहानियों को जासूसी कहानियाँ कहते हैं। हिन्दी में पहले ऐसी कहानियाँ बहुत लिखी जाती थीं। कुछ कहानियों की कथावस्तु 'प्रेम' होता है जिसमें एक नायक किसी नायिका पर मोहित होता है, उसे प्राप्त करता है, वा नहीं प्राप्त करता। ऐसी कहानियों को प्रेम कहानी Love story कहते हैं। साहस-प्रधान कहानियों का हिन्दी में अभाव है पर अन्य देशों में बालक-बालिकाओं के लिए ऐसी कहानियाँ बहुत लिखी जाती हैं। जिन कहानियों में किसी पात्र का चरित्र चित्रण प्रधान रहता है, उन्हें स्केच वा शब्दचित्र कहते हैं—परन्तु अधिकतर ऐसे स्केच कहानी की श्रेणी में नहीं जाते। प्रायः वे हास्यरस-प्रधान होते हैं और हास्यरस के निबन्धों में उनकी गणना होती है। हास्यरस-प्रधान कहानियों का उद्देश्य केवल हँसाना होता है। हिन्दी में कुछ अन्योक्ति-प्रधान Allegorical कहानियाँ भी देखने में आती हैं—परन्तु उन्हें कहानी न कहकर कुछ और ही कहना उचित है—गद्यकाव्य, निबन्ध, जो कुछ भी हो।

कहानी के दोष—कहानी अपने उद्देश्य में तभी असफल होती है, जब वह पाठकों को सन्तुष्ट नहीं कर पाती। और सन्तुष्ट करने के लिए सबसे बड़ा गुण उसमें यह होना चाहिए कि उसमें कोई वस्तु अस्वाभाविक न हो। असामञ्जस्य, विरोध, शिथिलता, असम्भवता आदि ही इसके कारण होते हैं। आरम्भ से अन्त तक कोई ऐसी बात न हो कि पाठक रुककर कहने लगे—'यह व्यर्थ की बात है, यह असम्भव है'—आरम्भ से ही जो कहानी पाठकों की एकाग्रता को अन्त तक न निबाह सकी, वह कभी नहीं सफल कही जायगी।

प्लाट की मौलिकता कहानी में भारी गुण है, पर यह मौलिकता है क्या ! असली मौलिकता नवीन समस्या वा घटना की सृष्टि में नहीं वरन् उसकी व्याख्या, उसके निर्वाह पर है। मौलिकता कहानी की बन्दिश और निर्वाह में यदि हम चाहें तो पुरानी-से पुरानी समस्या को नया रूप दे सकते हैं।

प्रेम, विवाह, विच्छेद आदि समस्याएँ आज की नहीं, पर सभी अपनी-अपनी सूझ से नई कहानी लिख सकते हैं। मौलिकता कहने की कला में है, तथ्य की व्याख्या में है।

भाषा की शिथिलता, दुरूहता, उखड़ापन आदि भी कहानी के सौन्दर्य को नष्ट करते हैं। वाक्यों का विन्यास स्वाभाविक होना चाहिए। लम्बे लम्बे समास, संस्कृतगर्भित हिन्दी आदि से कहानी का उद्देश्य नष्ट हो जाता है। भावों की व्यञ्जना थोड़े शब्दों में अधिक स्वाभाविक रूप से होती है। क्रोध में हम कविता नहीं रचने लगते। विरह में विरही मेघदूत की सृष्टि नहीं करने बैठेगा। बातचीत में अधिक विस्तार, लेक्चरबाजी वगैरह अस्वाभाविक जान पड़ते हैं।

कहानी की धारा में आरम्भ से अन्त तक एक गति होनी चाहिए—कहीं रुकावट अच्छी नहीं लगती। उससे पाठक ऊब जाते हैं। ऊबना ही उसकी असफलता का प्रमाण है।

कहानी की उत्पत्ति—मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह अपनी कहना और दूसरे की सुनना चाहता है। यदि मनुष्य में आत्माभिव्यञ्जन की प्रकृति न होती तो आज साहित्य का अस्तित्व ही न होता—हम क्यों लिखते, क्या लिखते, किसके लिए लिखते? आत्माभिव्यजन की प्रवृत्ति ही हमें अपना दुःख-सुख, राग-द्वेष, आदि भावनाएँ दूसरो से कहने पर मजबूर करती हैं। हम दूसरों की इसी लिए सुनते हैं कि वे भावनाएँ हमें 'आत्मीय' सी लगती हैं। यदि उनका हमारे जीवन से कोई लगाव न हो तो हम उन्हें कभी न सुनें। यदि श्रोता ही न हो तो वक्ता क्या करेगा? कहानियो के उत्पत्ति के साथ ही साहित्य का जन्म हुआ होगा, यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है, अथवा आदि-साहित्य कहानी ही रहा होगा—यह कहना अधिक उपयुक्त होगा।

कहानी का सम्बन्ध हमारे निकटतम जीवन से है। विगत का इतिहास हम कथा या कहानी के ही रूप मे स्मरण रखते आये। मनुष्य का जीवन, उसके व्यापार कहानी नहीं तो हैं क्या? हम जब अपने विगत के अनुभवों का वा दूसरों पर बीती घटनाओं का वर्णन करने बैठते हैं उस समय ह[illegible]
[illegible]ी ही कहते हैं। आज हम गद्य के विकास के युग मे कहानी से [illegible]

विशेष प्रकार की रचना का परिचय देते हैं, परन्तु पद्य के युग में समस्त महाकाव्य, पुराण वीरकाव्य का आधार कथा वा कहानी ही तो था। जिस रचना में मानव व्यापारों का वर्णन आया—क्या वह 'कहानी' की आत्मा के बिना जीवित रह सकती है?

प्राचीन भारत मे कहानी-साहित्य—ससार के समस्त साहित्यों में भारतीय साहित्य प्राचीन है। हमारे सवप्राचीन ग्रन्थ वेदों में कहानियाँ मिलती हैं। एक नहीं अनेक कथाएँ वेदों में भरी पड़ी हैं। एक ऋषि इन्द्र को मानते हैं, यज्ञ में उनका आह्वान करते हैं। उन्हें हरे-हरे कोमल कुश पर बैठाते हैं। उन्हें सोम रस पिलाकर प्रसन्न करते हैं। वृत्रासुर को मारने के हेतु तैयार करते हैं—आदि आदि। वेदों में सवाद हैं, चरित्र हैं...ये ही तो कहानी के तत्त्व हैं। माना वे आधुनिक रूप में नहीं—पर बिन्दु रूप में तो कहानी के सभी तत्त्व प्राचीन वेदों में वर्तमान हैं।

सभ्यता के विकास के साथ-साथ—सभी वस्तुओं का विकास हुआ, उनकी रूपरेखा बदलती गयी। साहित्य भी बदला। सस्कृत काल में कथा-साहित्य का जोर बढा। कादम्बरी और दशकुमार-चरित, हितोपदेश, पञ्चतन्त्र आदि अमर ग्रन्थ इसके प्रमाण हैं, बौद्धकालीन भारत में 'जातक' कथाओं का प्रचार था। इनका प्रचार तो यहाँ तक बढा कि भारत के समीप के अन्य देशों में इनका अनुवाद हुआ।

हिन्दी भाषा के आरम्भ के युग में काव्य साहित्य का ज़ोर था, फिर भी कथानकों की रचना बन्द न हुई थी। हिन्दी में कितने कवियों ने आख्यानक काव्य लिखे। महाकाव्यों का प्रचार कम होने पर यद्यपि मुक्तक काव्य ही शेष रह गये, फिर भी कथानक साहित्य की धारा मरी नहीं। गद्य के विकास के साथ-साथ उसका रूप पुन. प्रकट होने लगा। सन् १८०३ में सैयद इन्शा-अल्ला खाँ ने 'रानी केतकी की कहानी' लिखी जिसको हम लोग खड़ी बोली की प्रथम कहानी कह सकते हैं। इसी समय लल्लूलाल ने प्रेमसागर, सदल-मिश्र ने नासिकेतोपाख्यान लिखा। लल्लूलालजी ने तो बैतालपचीसी, सिंहासनबत्तीसी तथा शुकबहत्तरी—नामक पुस्तकें भी लिखीं। यद्यपि ये अनुवाद हैं, पर कथानक-साहित्य के प्रारम्भिक युग में ये भी क्या कम थीं।

आधुनिक कहानी-साहित्य—आधुनिक कहानी साहित्य का विकास प्राचीनधारा से कोई सम्बन्ध नहीं रखता। उसकी शैली पाश्चात्य ढंग का अनुसरण करती है। हिन्दी में कहानी लिखने का चलन बंगला के अनुकरण से हुआ। बंगाल में अंग्रेजों का आगमन बहुत पहले हुआ था। बंगाल-वालों पर अंग्रेजी शिक्षा और साहित्य का प्रभाव पहले पड़ा। सर्वप्रथम बँगला में 'गल्प' नाम से छोटी छोटी कहानियों के लिखने का प्रचार बढ़ा। उनकी देखादेखी हिन्दीवालों ने भी उन्हें पढ़ने के लिए उनका अनुवाद हिन्दी में प्रकाशित किया। उसी प्रकार की अनुवादित कहानियाँ सर्वप्रथम 'सरस्वती' में छपीं। इन्हीं दिनों बाबू गिरजाकुमार घोष ने कुछ अनुवाद, कुछ स्वतंत्र अनुवाद और कुछ अपनी मौलिक कहानियाँ 'सरस्वती' में छपाई थीं।

हिन्दी मे अपनी ओर मौलिक कहानियो का प्रचार 'इन्दु' पत्रिका से हुआ। 'सरस्वती' में भी पण्डित किशोरीलाल गोस्वामी ने 'इन्दुमती' नामक एक कहानी लिखी थी। यह सन् १६०२ की बात है। सन् १६११ में जय-शंकर प्रसाद ने 'इन्दु' मे मौलिक कहानी लिखी। इसके पश्चात् तो कहानी लिखना आरम्भ हो गया। हिन्दी कहानी का वर्तमान युग 'इन्दु' से आरम्भ होता है।

नवयुग की कहानी—हिन्दी कहानी साहित्य में युगान्तर उपस्थित करनेवाले प्रेमचन्द हैं। उसके पहले आप उर्दू में लिखा करते थे। हिन्दी में आते ही आपका आदर हुआ—फिर तो आप हिन्दी के हो गये। आपके पश्चात् हिन्दी कहानी का जोर बढ़ता ही गया और अब भी बढ़ता ही जाता है। हिन्दी की पत्रिकाओं की संख्या भी पहले से बहुत बढ़ गई। शायद ही कोई ऐसा पत्र हो—क्या मासिक, क्या साप्ताहिक वा दैनिक जिसमें कहानी को स्थान न मिले। गद्य साहित्य में आजकल उपन्यास और विशेषकर कहानियों की प्रधानता हो रही है। ये लक्षण अच्छे हैं। अब कहानी कला का भी विकास होता जा रहा है। अच्छी-से-अच्छी कहानियाँ देखने मे आ रही हैं। उनमें कुछ निश्चय ऐसी हैं जो संसार की श्रेष्ठ कहानियों मे स्थान पा सकती हैं। आधुनिक कहानियों का विषय, लेखन-शैली आदि भी विभिन्न और [illegible]र होती जा रही हैं। परन्तु अधिकतर जैसा बाबू श्यामसुन्दरदा

कहते हैं—'घटनाओं की सहायता से पात्रों की व्यक्तिगत विशेषताओं को चित्रित करना आजकल की कहानियो का मुख्य लक्ष्य हो रहा है। समाज की कुरीतियों के प्रकाशनार्थ भी कहानियाँ लिखी जाती हैं, ऐतिहासिक तत्त्वों पर प्रकाश डालने की दृष्टि से भी कहानी लिखी जाती हैं और दार्शनिक कहानियाँ भी लिखी जाती हैं।'

कुछ कहानी-लेखक और उनकी शैली—इस संग्रह में यह असम्भव था कि हिन्दी के समस्त कहानी-लेखकों की एक-एक कहानी रखी जाती। विस्तार-भय के अतिरिक्त पाठ्य क्रम की दृष्टि से सभी लेखकों की कहानी इंटरमीडियट के छात्रों के काम की भी नहीं। परन्तु जहाँ तक हो सका है, अच्छे-अच्छे कहानी लेखकों की एक ऐसी रचना चुनी गई है जो उनकी शैली की परिचायक होते हुए हमारे संग्रह के योग्य भी हो। यहाँ हम एक एक कर उन लेखको की विशेषता पर प्रकाश डालना उचित समझते हैं।

गुलेरीजी—श्री चन्द्रधरजी गुलेरी की केवल एक ही कहानी मिलती है, परन्तु वह संसार की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में आदर पा सकती है। यदि २८ वर्ष की अल्पायु में उनकी अकाल मृत्यु न हो जाती तो हिन्दी कहानी साहित्य मे जाने कितने उज्ज्वल रत्न वे भर देते।

'उसने कहा था'—में हम कला की उत्तम झलक देखते हैं। गुलेरीजी की यह कहानी 'यथार्थवाद' (Realistic) श्रेणी की उत्तम कृति है। इसमें लेखक किसी आदर्श को व्यंजना नहीं करता—न कुछ उपदेश देता है। मानव-समाज का उसने एक कलापूर्ण चित्र सामने रखा है। उनकी अनुवीक्षण शक्ति की कुशलता और प्रौढ़ता इस कहानी मे प्रकट होती है। आधुनिक समालोचना-सिद्धान्तों की कसौटी पर उतारने पर हमें उसके 'आरम्भ' में कुछ अनौचित्य देख पड़ेगा। आज-कल का कहानी-लेखक इस प्रकार 'निबन्ध' रूप में आरम्भ नहीं करेगा। यदि हम आरम्भ का कुछ अंश निकाल दें तो कोई हर्ज नहीं। परन्तु 'जिस युग में यह कहानी लिखी गयी थी उसमें इस प्रकार का 'बाँधनू' बाँधने का चलन था। यह कहना भी अनुचित होगा कि 'आरम्भ' व्यर्थ है—नहीं इस प्रकार लेखक पाठकों के मन में एक विशेष प्रकार का वातावरण उपस्थित करता है। हम उस प्रदेश के व्यक्तियों के

व्यवहार से परिचित हो जाते हैं जिनमें से आगे चलकर हमारी कहानी के पात्र निकलते हैं।

'आरम्भ' के बाद तो गुलेरीजी की कहानी उतनी स्वाभाविक रूप से चलती है कि जान ही नहीं पड़ता कि इसमें कहीं कोई कमी है। समस्त प्रसार मनोवैज्ञानिक आधार पर है। पाठक का ध्यान धीरे-धीरे उन वस्तुओं और घटनाओं की ओर आकृष्ट होता है जिसकी आवश्यकता प्रतीत होती है। भाषा की सरलता और स्वाभाविकता ने कहानी में जान डाल दी। कथोपकथन में नाटकों की-सी यथार्थता है। यही कारण है कि पात्र हमें साक्षात् मूर्तिमान दिखाई पड़ते हैं। उनका स्वाभाविक आचरण उन्हें हमारे बीच खींच लाता है। समस्त कहानी का आधार वीरोचित प्रेम है। इस प्रेम में इच्छा नहीं, वासना नहीं, स्वार्थ नहीं—है तो केवल पुरुष के पौरुष का वह गुप्त रहस्य जो केवल प्रेम जैसी कोमल वस्तु के आघात से खुल पड़ता है? फिर तो वह जान पर खेल जाता है, पुरुषत्व की पराकाष्ठा कर दिखाता है। किसी लाभ की आशा से नहीं, किसी लोभ की लालसा से नहीं—वरन् स्वान्तःसुखाय—केवल यह कल्पना कर कि एक स्त्री, एक अबला—उसके पुरुषत्व का बखान करेगी। इसी कोमल वृत्ति ने, इसी तथ्य ने पुरुष को स्त्री पर विजयी रखा—नारी यदि पराजित हुई तो पुरुषत्व के आतंक से नहीं वरन् उसके आत्म-त्याग से!

गुलेरीजी ने अपनी कहानी में chivalry का सुन्दर आदर्श खड़ा किया है। वे कुछ कहते नहीं पर घटनाओं का क्रम, पात्रों का आचरण, सारी बातें हमारे मन को उसी आदर्श की ओर ले जाती हैं। Realistic कहानी लेखक की यही आदर्शवादिता है। वह कुछ कहता नहीं—वरन् हम पर ऐसा प्रभाव डालता है कि हम स्वयं उसी परिणाम पर पहुँचते हैं जिसे वह कहना नहीं चाहता। यही कला है जो Realistic कहानी का आदर्श निश्चय करती है। केवल घटनाओं और वस्तुओं के नग्न और स्वाभाविक वर्णन को कहानी नहीं कहते। कहानी की सरसता यत्र-तत्र हास्य और विनोद के पुट से सुरक्षित रखी गई है। सरस साहित्य का उद्देश्य सात्विक मनोरञ्जन है—न हँसना, न केवल रुलाना।

सुदर्शन—वर्णनात्मक ढङ्ग की कहानियों के लेखकों में सुदर्शनजी का कमाल देखने योग्य होता है। आरम्भ से ही ऐसी अविरल धारा छूटती है कि पाठक फिसलता हुआ, बहता हुआ अन्त में किनारे जा लगता है। वह अपने को भूल-सा जाता है। भाषा का तो कहना ही नहीं—स्वाभाविक सरस और जोरदार। सुदर्शनजी की कहानियों में 'रहस्य' का उद्घाटन इस प्रकार होता है कि पाठकों का कुतूहल (Suspense) बना रहता है। आदर्शवाद के सिद्धान्तों को वे कभी नहीं छोड़ते। इसके अनुसार वे अपनी कथावस्तु को ऐसे घुमाते रहते हैं कि 'नाटक' का आनन्द आता है। इस संग्रह की कहानी में राजपूतनी का उच्च आदर्श दिखाते हुए उन्होंने मनुष्य के दोनों प्रकार के आसुरी और दैवी भावों का दिग्दर्शन कराया है। सुलक्षणा को हम एक स्त्री के रूप में पाते हैं जो पुरुष के गुणों पर मोहित होकर उससे प्रेम करती है—और उस पर अपना पूर्ण अधिकार पाना चाहती है। यही नहीं, उसे न पाने पर उस प्रिय वस्तु को नष्ट तक कर देना चाहती है। यह एक साधारण स्त्री की मनोवृत्ति है जो अधोगति को प्राप्त होकर अपने प्रियतम का सिर चाहती है। परन्तु यही स्त्री अपने समाज के संस्कारों के प्रभाव से सोचने लगती है—

"यह राजपूतकुलभूषण है और धर्म पर स्थिर रहकर जाति न्योछावर हो रहा है। मैं भ्रष्टा होकर अपनी जाति के एक बहुमूल्य व्यक्ति के प्राण ले रही हूँ।"—यह विचार उस नारी में कायापलट कर देता है। पिशाचिनी से देवी बन जाती है!

सुदर्शनजी ने भारतीय समाज को समझने की चेष्टा की है। हमारा समाज यद्यपि इस गिरी दशा को पहुँचा हुआ है, फिर भी पुराने संस्कार अब भी बिल्कुल मर नहीं गये। क्षणिक आघात से हमारी सोती हुई आत्मा जग सकती है। हम अपने आदर्शों पर मर मिट सकते हैं। हम निर्बल हो गये ठीक, पर हमारी आन अभी एकदम नहीं मरी। सुदर्शनजी की सूक्तियाँ बड़ी मार्मिक होती हैं। इनसे प्रसुप्त भावनाएँ एकदम जग उठती हैं। इनमें दार्शनिक की व्याख्या तो है ही पर कवि का हृदय भी है।

कौशिक—कौशिकजी भी सुदर्शन ही के श्रेणी के लेखक हैं, पर इनकी कहानियों में पारिवारिक जीवन के विशद चित्र मिलते हैं। उनकी शैली भी

चुस्त और कथोपकथन स्वाभाविक हैं। विद्रोही कहानी में हमें उनकी शैली का सुन्दर रूप मिलता है। आरम्भ कितना सुन्दर है—कहानी के भावी कथानक का आभास मिलता है। कितना चुस्त वार्तालाप है—मानो नाटक हो। कौशिकजी आवश्यकता से अधिक करना नहीं जानते। उनके वाक्य छोटे-छोटे और चुस्त होते हैं। उनका वर्णन 'विस्तार' का दोषी नहीं होने पाता। यदि आवश्यकता हुई तो दो एक वाक्यों में सारा काम कर दिया। जैसे—

'रणभेरी बजी। कोलाहल मचा। मुगल सैनिक मैदान में एकत्रित होने लगे। पत्ता-पत्ता खड़खड़ा उठा। बिजली की भाँति तलवारें चमक रही थीं। उस दिन सब में उत्साह था। युद्ध के लिए भुजाएँ फड़कने लगी थीं।'

× × ×

'श्रावण का महीना था।'

× × ×

कौशिकजी 'अन्त' भी सुन्दर लिखते हैं। संक्षिप्त और चुभता। अन्तिम वाक्य तो कुछ देर तक पाठक के मन में गूँजते रहते हैं। जैसे—

"तुम्हारी मनोकामना पूरी हुई—मैं प्रताप के सामने परास्त हो गया!'

× × ×

और जरा सोचिए उसके बाद शीर्षक—"विद्रोही" कितना उपयुक्त है।

जैनेन्द्रकुमार—कहानी के क्रमिक विकास और पात्रों के चरित्र के विकास के चित्रण में जैनेन्द्रजी अपने क्षेत्र में अकेले हैं। उसके कारण आपकी कहानी यद्यपि मंथर गति से चलती है, पर उसकी मस्ती में अन्तर नहीं आता। आपकी भाषा भी सरल पर कुछ शिथिल होती है। जैनेन्द्रजी की विशेषता इस बात में है कि आप मानव मानस की सूक्ष्म से-सूक्ष्म तरंगों पर ध्यान रखते हैं। अन्तर्द्वन्द्व की व्याख्या आपकी बड़ी सुन्दर होती है। आप पात्रों के आन्तरिक विश्लेषण करने में बड़े प्रवीण हैं। आपके पात्र हमारे सामने 'मनुष्य' से गुण-दोष भरे आते हैं पर 'मनुष्य' ही की तरह वे विवेक से काम लेते हैं। और यही उन्हें ऊपर उठाता है। आपकी कहानियाँ 'यथार्थ' श्रेणी की होती हैं। सामाजिक व्यवस्था या भारतीय वातावरण से आपका अधिक लगाव नहीं और मनुष्य को मनुष्य और 'सविवेक पशु' मानते हुए लिखते हैं

इसी से मानवी भाव तो वे बहुत सुन्दर चित्रित करते हैं, पर भारतीय वातावरण के अनुरूप कभी-कभी वे अपनी कहानी नहीं बना पाते। कला तो होती है। उसमें उपयोगिता वे मानते नहीं।

जयशकर प्रसाद—जयशकर प्रसादजी कवि हैं, भावुक हैं, कलाकार हैं। जयशकर प्रसादजी की अपनी कुछ भावनाएँ हैं, समाज की व्यवस्था के विषय में उनके अपने सिद्धान्त हैं। आपकी कहानी भाव-प्रधान होती है। आप 'यथार्थवाद' के पक्ष में होते हुए अधिक Rational होना चाहते हैं। आपके पात्रों पर केवल विवेक का बधन रहता है और भावों का प्राचुर्य्य। यही कारण है कि आपके पात्र सजीव होते हुए भी 'दुर्लभ' प्रतीत होते हैं; आप नाटककार हैं—आपकी कहानियों में इसी हेतु कथोपकथन की चुस्ती देख पड़ती है। आप अतर्द्वन्द्व की व्याख्या कम करते हैं—सफल नाटककार की भाँति बातचीत में उसे बड़ी सुन्दरता से प्रकट करते हैं। कथोपकथन लिखने में तो आप एक हैं। आपकी कहानी में चुस्ती रहती है—आकर्षक 'आरंभ' तो होता ही है पर 'अत' भी अपने ढग का निराला होता है—बड़ा ही भावपूर्ण, ध्वन्यात्मक और सहसा पढने के बाद पाठक का मन झकझोर उठता है। वह एक समस्या को पुनः सुलझाने लगता है—सोचता है—'फिर क्या हुआ, आगे क्या हुआ—' इस प्रकार का अत कुछ आलोचक अच्छा नहीं मानते पर प्रसादजी की कहानियों में यही गुण है।

चतुरसेन शास्त्री—आधुनिक 'जर्नलिस्टिक' (Journalistic) टाइप के कहानी लेखकों में चतुरसेन शास्त्री की लेखनी सचमुच लौह-लेखनी है। आपकी कहानियो में प्रौढता है, जोश है, चोट है, प्रवाह है, रोचकता और हृदय को लुभानेवाली शक्ति है। आपकी भाषा बड़ी ही मुहावरेदार और ओजस्विनी होती है। आप कहना जानते हैं—यही आपकी कला है। कहानी आरम्भ कर हम बिना समाप्त किये नहीं छोड़ सकते। यह दूसरी बात है कि उसका स्थायी प्रभाव मन पर न पड़े। पर पढते समय हम उसे पढ़ने में तन्मय हो जाते हैं। आपका वर्णन विशद, सजीव और स्वाभाविक होता है। आप एक 'समाँ' खड़ा कर देते हैं। सारा वातावरण तदात्मक हो जाता है। आपकी कहानी में शराब की-सी मादकता होती है। मजा आता है। आपकी कहा-

नियों में 'घटना' प्रधान होती है, इसमें dramatic touch रहता है। कहानियों की रवानी दरिया की भाँति उमड़ती चलती है। पानवाली कहानी आपकी शैली की प्रतिनिधि है।

राय कृष्णदास—राय कृष्णदास कवि हैं, कला-मर्मज्ञ हैं और भावुक व्यक्ति हैं। आपकी कहानियों मे दार्शनिक विचारो का होना स्वाभाविक है। आपकी कहानियों की शैली आजकल की 'परख' की कसौटी पर उतारने पर खटकेगी। प्रस्तुत कहानी 'सम्राट का स्वत्व' में पूरे दो पृष्ठ का 'आत्मभाषण' आज कल कोई न लिखेगा। परन्तु अपने स्थान पर यह बुरा नहीं। भावों का अन्तर्द्वन्द्व उससे बढ़कर सुन्दर रीति से प्रकट नहीं किया जा सकता। आपकी कहानियों में 'निबन्ध' का रग दिखायी पड़ता है। आपकी भाषा भी कवित्व-मय होती है। बीच-बीच में आलकारिक उक्तियों आदि में उसकी शोभा और बढ जाती है। आपकी भाषा काशी के साहित्यिकों की 'हिन्दी' है जिसे लोग 'तत्समवादी' कहते हैं। घटनाओ की प्रधानता न होकर आपकी कहानियों में भावों की प्रधानता रहती है। जयशकर प्रसादजी की शैली से आपकी शैली का बन्धुत्व नजर आता है।

प्रेमचन्द—भारतीय हृदय को विशेषकर भारतीयों की बहु सख्या—ग्रामीणों के हृदय को जितना प्रेमचन्द ने समझा है, उतना हिन्दी में किसी ने भी नहीं—यह निर्विवाद सि है। बाबू श्यामसुन्दरदास लिखते हैं—'प्रेमचद की कहानियों में सामाजिक समस्याओं पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। उनकी भाषा-शैली कहानियों के बहुत उपयुक्त हुई है और उनके विचार भी सब पढे-लिखे लोगों के विचार से मिलते-जुलते हैं। यही कारण है कि प्रेमचद की कहानियाँ सब मे अधिक लोकप्रिय हैं।' पडित गणेश-प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं—'ये (प्रेमचद) चरित्र चित्रण में अपनी सानी नहीं रखते—इनमें मुख्य बात यह है कि ये महाशय कहानी या उपन्यास जो कुछ भी लिखते हैं वह सोद्देश्य रच ने। उनकी हर एक कहानी में जन समाज के लिए कोई न कोई उपदेशात्मक सदेश रहता है। सामाजिक अथवा नैतिक कुरीतियों का निवारण आपका लक्ष्य रहता है। पर आपका कभी डर नहीं होता, बल्कि जो कुछ आप कहते हैं इस प्रकार की

मीठी व्यंगपूर्ण भाषा में कहते हैं कि पाठक को कटुता का अनुभव कदापि नहीं होता, बस इसी में प्रेमचदजी का कौशल है। इनके अधिकार में एक बड़ी ही सरल तथा चुस्त भाषा शैली आ गयी है। इसका एक कारण शायद यह भी है कि आप उर्दू के बड़े अच्छे लेखक हैं। एक और मुख्य बात इनकी लेखनकला के विषय में यह है कि ये मनुष्य-जीवन की साधारण घटना को लेकर उसका निष्कर्ष निकालते समय मनुष्य-हृदय के गूढातिगूढ रहस्यों को मनोविज्ञान के नियमों के ढँग पर ऐसा सजाकर धर देते हैं कि देखते ही बनता है।'

प्रेमचद आदर्शवादी हैं। आपकी कहानियाँ किसी-न-किसी आदश की ओर सकेत करती है। आप मानव-जीवन के उच्च आदर्श के हिमायती हैं। भारतीय सस्कृति के मुरझाये हुए प्रभाव को जाग्रत् करने में आपकी कहानियाँ काफी सहायता देती हैं। मनुष्य को ऊपर उठाना, उसे सपूर्ण मनुष्य बनाना, इतना ही नहीं उसे चारों ओर अन्धकार से बचाकर ज्ञान, त्याग और महान् आदर्शों का मार्ग दिखाना आपका लक्ष्य रहता है। उसमें आप सपूर्ण रूप में सफल हुए हैं—भारतीय हृदय को आपकी कहानियाँ जितनी जँचती हैं, उतनी अन्य किसी की नहीं।

श्रीभारतीय—नवीन लेखकों में श्रीभारतीय का नाम सबसे प्रथम लिया जा सकता है। थोड़े ही दिनों से आपने कहानी लिखना आरम्भ किया और थोड़े ही समय में उच्च कोटि की कहानियों की रचना आपने कर दिखायी। आप हिन्दी के विद्वान् हैं। सस्कृत-साहित्य के ज्ञाता हैं। भाषा पर आपका अधिकार है। प्राचीन तथा नवीन साहित्य के आदर्शों के आप ज्ञाता हैं। आपका अध्ययन, चिंतन दोनों विस्तृत और गम्भीर हैं। यही कारण है कि कहानी क्षेत्र में उतरते ही दो हो चार हाथ मारने पर आप पारगत प्रतीत होते हैं। आपकी रचना-शैली की प्रौढता और कलात्मक वृत्ति का चमत्कार आपकी 'मुनमुन' कहानी में अच्छा मिलता है। यह आपकी सहृदयता का परिचायक है कि एक बकरा के बच्चे में आपने इतनी जान भर दी कि वह मनुष्य-सा आचरण करता है। आपकी अन्वीक्षण शक्ति और वर्णन-शैली का यह उत्कृष्ट उदाहरण है। आप भी प्रेमचद की भाँति साहित्य को 'निरुद्देश्य'

नहीं मानते। आप साहित्य को मनुष्य के उत्थान का साधन मानते हैं। भारतीय दृष्टिकोण से साहित्य की सृष्टि करने के हेतु ही मानों अपने 'भारतीय' उपनाम अंगीकार किया है।

भारतीयजी की कहानियों मे सजीवता और स्वाभाविकता के साथ साथ जीवन का उनका अपना दृष्टिकोण स्थल स्थल पर व्यंग रूप से प्रकट होता है। आप Rationalist हैं परन्तु साथ ही साथ आप भारतीय संस्कृति के परम भक्त भी हैं। आप अंधभक्ति को मूर्खता और अज्ञान का परिणाम समझते हैं। आप के सिद्धांतों के अनुसार मनुष्य की सभ्यता की पराकाष्ठा सहृदयता में है, दूसरों को सहानुभूति पूर्वक समझने में है—चाहे वह मनुष्य हो, चाहे पशु हो, चर हो या अचर हो। इसी कारण 'मुनमुन' में आपने कई स्थल पर चोट की है—कहीं ईश्वर पर, कहीं समाज पर, कहीं मनुष्य की विवेकशक्ति पर। स्थल-स्थल पर जैसे उनकी इच्छा यह प्रकट करने की हो—'मनुष्य, प्रथम अपनी ओर देख Know thyself!'

आपकी कहानियों का आधार Realistic पद्धति है। पर आप समाज के नियमों वा मनुष्य की वर्तमान अनुभूतियों के विरुद्ध आचरण करने की साहस नहीं करना चाहते। हाँ अंतर्द्वन्द्व रूप में आप यह अवश्य प्रकट कर देते हैं कि हम सामाजिक प्राणी हैं—विवश हैं—पर हमारी आत्मा मरी नहीं समझती हैं, चैतन्य है, पर वह विद्रोह करने पर तैयार नहीं। आपका लक्ष्य मनुष्य की आत्मा को जीवित रखना है, उसे समाज और संस्कार के प्रभावों से अप्रभावित रखना है। पर मनुष्य रहते वह विद्रोह नहीं कर सकती, करके फिर जीवित नहीं रह सकती। इसी हेतु आप विद्रोही आचरणों के प्रति झुकते नहीं। आप 'व्यक्तिवादी' नहीं वरन् 'समाजवादी' हैं। 'मुनमुन' के अंग में आप के सिद्धान्त इस वाक्य से ध्वनित होते हैं—

'एक ने, मानों मानव-समाज की हृदयहीनता का आजीवन अनुभव कर दार्शनिक की उदासीनता प्राप्त की थी—दूसरा, मानव-जाति की सभ्यता की वेदी के सोपान की ओर घसीटे जाने पर बकरी के बच्चे की भाँति छटपटा या!'

[illegible] की सभ्यता का खोखलापन कितनी सुन्दरता से ध्वनित होता है—

पर उसके प्रति विद्रोह की व्यंजना नहीं—दार्शनिक का उदासीनता की ओर लक्ष्य है। जो है वह रहेगा—रहे, पर उसकी निस्सारता समझना चाहिए। आत्मज्ञान को सचेत रखना—यही भारतीयजी का मानो सन्देश है।

वीरेश्वरसिंह—श्रीवीरेश्वरसिंहजी की कुछ कहानियाँ पत्रिकाओं में छपी हैं। उन्हें अभी पुस्तकाकार छपने का अवसर नहीं मिला, पर इन कहानियों को देखकर एक उदीयमान लेखक का परिचय मिलता है। आपकी भाषा में प्रवाह है, प्रौढ़ता है पर यत्र तत्र सयम की कमजोरी दीख पड़ जाती है। यह बहुत दिनों तक रुकनेवाली नहीं। आप में कहानी की अनुभूति है, कहने की प्रतिभा है। आपकी भाषा में कहीं-कहीं कवित्व दिखाई पड़ जाता है। 'परिवर्तन' नामक कहानी में आपकी सहृदयता और अन्वीक्षण-शक्ति का आभास मिलता है। आप अन्तर्द्वन्द्व दिखाने की चेष्टा करते हैं और तह तक पहुँचने का प्रयत्न करते हैं। आपकी वर्णन शैली ध्वन्यात्मक होती है। सक्षेप में, चुटीली भाषा में अधिक भाव प्रकट करने की आप चेष्टा करते हैं। प्रस्तुत कहानी मे 'राम' के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व को दिखाकर आपने 'परिवर्तन' शीर्षक की सार्थकता प्रमाणित कर दी है।

भुवनेश्वरप्रसाद—भुवनेश्वरप्रसाद की रचनाओं में कला का आभास है यद्यपि उन पर पाश्चात्य प्रभाव छिपे नहीं रह सके हैं। आपकी शैली जैनेन्द्रजी की शैली के रास्ते पर चलती नजर आती है, पर जैनेन्द्रजी की भाषा की शिथिलता इसमें अनुपस्थित है। भुवनेश्वरप्रसाद मानव प्रकृति के विश्लेषण की ओर अधिक ध्यान देते हैं। इनकी कहानियाँ भाव-प्रधान है। बीच-बीच में घटनाएँ तो केवल आधार-मात्र ही होती हैं। इनकी कहानी में घटनाक्रम, मनोवैज्ञानिक परिवर्तन अधिक होता है। 'मौसी' नामक कहानी में इनकी शैली का सच्चा स्वरूप दिखाई पड़ता है। ये कुछ ही कहते हैं, बहुत कुछ छोड़ जाते हैं—उनका न कहना अधिक वाचाल है। वियोगान्त वा दुःखान्त कथावस्तु की ओर इनका अधिक झुकाव है। इनकी कहानियों के पात्र सजीव पर भावुक व्यक्ति जान पड़ते हैं। कथोपकथन तो इनके बहुत सक्षिप्त और मार्मिक होते हैं। बात यह है कि आप नाटककार भी हैं। इनकी दार्शनिकता किसी निश्चित सिद्धान्त की ओर लक्ष्य न कर केवल अपने उधेड़बुन में उलझ

जाती है। इनकी शैली में चोट है, ओज है और है आधुनिक कला की छाया। भविष्य मे आशा है, इनकी लेखनी और विचार शैली प्रौढ़ होकर साहित्य की अच्छी सेवा कर सकेगी।

सद्गुरुशरण अवस्थी—अवस्थीजी साहित्य के आलोचक हैं, शिक्षक हैं, स्वाध्यायी हैं। अभी हाल ही में आपकी कहानियों का सग्रह प्रकाशित हुआ है। उसमें 'फूटा शीशा' नामक एक शीर्षक पर दस कहानियाँ हैं। इनको पढकर अवस्थीजी की वर्णन-शक्ति, विचार-शक्ति, विश्लेषण-शक्ति का कायल होना पडता है। वे जैसे साहित्य के आलोचक हैं, वैसे जीवन के भी आलोचक हैं। इनकी कहानियो मे सबसे सुन्दर वे स्थल हैं जहाँ ये अपने पात्रो के अन्तर्जगत् में प्रवेश करते हैं। वे कहीं अपने पात्र से पराभून नहीं होते, कहीं आवेश में नहीं आते। उनकी दार्शनिकता सदैव उनकी कल्पना पर अकुश लगाए रहती है। उनकी दृष्टि यथार्थ पर रहती है। आदर्शों के मोह में कहीं नहीं पड़ती। इनमें रसों का विकास और भावो की व्यजना उतनी नहीं है जितनी जीवन तत्वों पर पहुँचने की प्रेरणा। इनकी सृजन-शक्ति एकागी नहीं। प्रस्तुत सग्रह की कहानी 'फूटा शीशा' मे प्रेम स्मृति का बडा रोमाचकारी चित्रण दिखाई पडेगा। इसमें नगरों की काल कोठरियों में बसनेवालों का एक कारुणिक दृश्य का भी साक्षात् होता है। अवस्थीजी की भाषा में उक्ति-वैचित्र्य है, कहने का तर्ज है, साहित्यिकपन है। कहीं-कहीं हास्य तथा व्यगकी हलकी तरग भी दिखाई पड जाती है।

श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

(सन् १८८३—१९२२)

[आपका जन्म काँगड़ा प्रान्त के गुलेर नामक गांव में हुआ। [illegible] अंग्रेजी के अच्छे विद्वान थे। भाषा-शास्त्र पर आपका खास अधिकार था। आप हिन्दू विश्वविद्यालय में प्राच्य शिक्षा-विभाग के अध्यक्ष थे। आप जयपुर के समालोचक और नागरी प्रचारिणी-पत्रिका के सम्पादक भी थे। आपकी कहानियों में आपकी अद्भुत प्रतिभा अपूर्व कल्पना शक्ति, वर्णन-चातुरी और अनूठी भाषा का परिचय मिलता है।

ऐसे विद्वान की स्वर्ग में भी आवश्यकता हुई। ३८ वर्ष की अल्पायु में ही आप स्वर्ग सिधार गये।]

उसने कहा था

बड़े-बड़े शहरों के इक्के-गाड़ीवालों की जबान के कोड़ों से जिनकी पीठ छिल गई है और कान पक गये , उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर के बम्बूकार्टवालों की बोली का मरहम लगावें। जब बड़े-बड़े शहरों की चौड़ी सड़कों पर घोड़ों की पीठ को चाबुक से धुनते हुए इक्केवाले कभी घोड़े की नानी से अपना निकट सम्बन्ध स्थिर करते हैं, कभी राह चलते पैदलों की आँखों के न होने पर तरस खाते हैं, कभी उनके पैरों की अँगुलियों के पोरों को चीथकर अपने ही को सताया हुआ बताते हैं और संसार-भर की ग्लानि, निराशा और क्षोभ के अवतार बने नाक की सीध चले जाते हैं, तब अमृतसर में उनकी बिरादरीवाले, तंग, चक्करदार गलियों में, हर एक लड्ढीवाले के लिए ठहरकर सब्र का समुद्र उमड़ाकर 'बचो खालसाजी', 'हटो भाईजी', 'ठहरना भाई', 'आने दो लालाजी', 'हटो बाछा', कहते हुए सफेद फेंटों, खच्चरों और बत्तकों, गन्ने खोमचे और भारेवालों के जंगल में से राह खेते हैं। क्या मजाल है कि 'जी' और 'साहब' बिना सुने किसी को हटाना पड़े। यह बात नहीं कि उनकी जीभ चलती ही नहीं, चलती है, पर मीठी छूरी की तरह महीन मार करती हुई। यदि कोई बुढ़िया बार-बार चितौनी देने पर भी लीक

से नहीं हटती तो उनकी वचनावली के ये नमूने हैं—हट जा, जीणे-जोगिये, हट जा, करमावालिये; हट जा, पुत्ता-प्यारिये; बच जा, लम्मी वालिये। समष्टि में इसका अर्थ है कि तू जीने योग्य है, तू भाग्योंवाली है, पुत्रों को प्यारी है, लम्बी उमर तेरे सामने है, तू क्यों मेरे पहियों के नीचे आना चाहती है? बच जा।

ऐसे बम्बूकार्टवालों के बीच में होकर एक लड़का और एक लड़की चौक की दूकान पर आ मिले। उसके बालों और उसके ढीले सुथने से जान पड़ता था कि दोनों सिख हैं। वह अपने मामा के केश धोने के लिए दही लेने आया था और यह रसोई के लिए बड़ियाँ। दूकानदार एक परदेशी से गुथ रहा था, जो सेर भर गीले पापड़ों की गड्डी को गिने बिना हटता न था।

'तेरे घर कहाँ हैं?'

'मगरे में,—और तेरे?'

'माँझे में,—यहाँ कहाँ रहती है?'

'अतरसिंह की बैठक में, वे मेरे मामा होते हैं।'

'मैं भी मामा के यहाँ आया हूँ, उनका घर गुरुबाजार में है।

इतने में दूकानदार निबटा और इनका सौदा देने लगा। सौदा लेकर दोनों साथ-साथ चले। कुछ दूर जाकर लड़के ने मुस्कराकर पूछा—'तेरी कुड़माई हो गई?' इस पर लड़की कुछ आँखें चढ़ाकर 'धत्' कहकर दौड़ गई और लड़का मुँह देखता रह गया।

दूसरे-तीसरे दिन सब्जीवाले के यहाँ या दूधवाले के यहाँ अकस्मात् दोनों मिल जाते। महीना भर यही हाल रहा। दो तीन बार लड़के ने फिर पूछा, 'तेरी कुड़माई हो गई है?' और उत्तर में वही 'धत्' मिला। एक दिन जब फिर लड़के ने वैसे ही हँसी में चिढ़ाने के लिए पूछा तो लड़की, लड़के की सम्भावना के विरुद्ध बोली—'हाँ, हो गई।'

'कब?'

'कल,—देखते नहीं यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू।' लड़की भाग गई। [illegible]के ने घर की राह ली। रास्ते में एक लड़के को मोरी में ढकेल दिया, [illegible]वाले की दिन भर की कमाई खोई, एक कुत्ते पर पत्थर मारा

और एक गोभीवाले के ठेले में दूध उँडेल दिया। सामने नहाकर आती हुई किसी वैष्णवी से टकराकर अन्धे की उपाधि पाई। तब कहीं घर पहुँचा।

[२]

'राम राम, यह भी कोई लड़ाई है! दिन-रात खन्दकों में बैठे-बैठे हड्डियाँ जकड़ गईं। लुधियाने से दस गुना जाड़ा और मेह और बरफ ऊपर से। पिण्डलियों तक कीचड़ में धँसे हुए हैं। गनीम कहीं दिखता नहीं—घण्टे दो घण्टे में कान के परदे फाड़नेवाले धमाके के साथ सारी खन्दक हिल जाती है और सौ-सौ गज़ धरती उछल पड़ती है। इस गैबी गोले से बचे तो कोई लड़े। नगरकोट का जलज़ला सुना था, यहाँ दिन में पचीस ज़लज़ले होते हैं। जो कहीं खन्दक के बाहर साफ़ा या कुहनी निकल गई, तो चटाक से गोली लगती है। न मालूम बेईमान मिट्टी में लेटे हुए वा घास की पत्तियों में छिपे रहते हैं।'

'लहनासिंह, और तीन दिन हैं। चार तो ख़न्दक में बिता ही दिये। परसों 'रिलीफ' आ जायगी और फिर सात दिन की छुट्टी। अपने हाथों झटका करेंगे और पेट भर खाकर सो रहेंगे। उसी फिरङ्गी मेम के बाग़ में, मखमल की सी हरी घास है। फल और दूध की वर्षा कर देती है। लाख कहते हैं, दाम नहीं लेती, कहती है तुम राजा हो, मेरे मुल्क को बचाने आये हो।'

'चार दिन तक पलक नहीं झँपी, बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है और बिना लड़े सिपाही। मुझे तो सङ्गीन चढ़ाकर मार्च का हुक्म मिल जाय। फिर सात जर्मनों को अकेला मारकर न लौटूँ तो मुझे दरबार साहब की देहली पर मत्था टेकना नसीब न हो। पाजी कहीं के, कलों के घोड़े—सङ्गीन देखते ही मुँह फाड़ देते हैं और पैर पकड़ने लगते हैं। यों अँधेरे में तीस तीस मन का गोला फेंकते हैं। उस दिन धावा किया था—चार मील तक एक जर्मन नहीं छोड़ा था। पीछे जनरल साहब ने हट आने का कमान दिया, नहीं तो—'

'नहीं तो सीधे बर्लिन पहुँच जाते, क्यों!' सूबेदार हजारासिंह ने मुसकरा-कर कहा—'लड़ाई के मामले जमादार या नायक के चलाये नहीं चलते। बड़े अफ़सर दूर की सोचते हैं। तीन सौ मील का सामना है। एक तरफ़ बढ़ गये तो क्या होगा?'

'सूबेदारजी, सच है'—लहनासिंह बोला—'पर करें क्या ? हड्डियों हड्डियों में तो जाड़ा धँस गया है। सूर्य निकलता नहीं और खाई में दोनों तरफ से चम्बे की बावलियों के से सोते झर रहे हैं। एक धावा हो जाय तो गर्मी आ जाय।' 'उदमी उठ, सिगड़ी में कोले डाल। वजीरा, तुम चार जने बाल्टियाँ लेकर खाई का पानी बाहर फेंको। महासिंह, शाम हो गई है, खाई के दरवाजे का पहरा बदला दे।' यह कहते हुए सूबेदार सारी खन्दक में चक्कर लगाने लगा।

वजीरासिंह पलटन का विदूषक था। बाल्टी में गँदला पानी भरकर खाई के बाहर फेंकता हुआ बोला—'मैं पाधा बन गया हूँ। करो जर्मनी के बादशाह का तर्पण!' इस पर सब खिलखिला पड़े और उदासी के बादल फट गये।

लहनासिंह ने दूसरी बाल्टी भरकर उसके हाथ में देकर कहा—अपनी बाड़ी के खरबूजों में पानी दो। ऐसा खाद का पानी पञ्जाब भर में नहीं मिलेगा।

'हाँ, देश क्या है, स्वर्ग है। मैं तो लड़ाई के बाद सरकार से दस घुमा जमीन माँग लूँगा और फलों के बूटे लगाऊँगा।'

'लाड़ी होरा को भी यहाँ बुला लोगे? या वही दूध पिलानेवाली फरङ्गी मेम—'

'चुप कर। यहाँवालों को शरम नहीं।'

'देश-देश की चाल है। आज तक मैं उसे समझा न सका कि सिख तम्बाकू नहीं पीते। वह सिगरेट देने में हठ करती है, ओठों में लगाना चाहती है, और मैं पीछे हटता हूँ तो समझती है कि राजा बुरा मान गया, अब मेरे मुल्क के लिए लड़ेगा नहीं।'

'अच्छा, अब बोधासिंह कैसा है?'

'अच्छा है।'

'जैसे मैं जानता ही न होऊँ। रातभर तुम अपने दोनों कम्बल उसे उढ़ाते हो और सिगड़ी के सहारे गुजर करते हो। उसके पहरे पर आप पहरा दे आते हो। अपने सूखे लकड़ी के तख्तों पर उसे सुलाते हो, आप कीचड़ में पड़े

रहते हो। कहीं तुम न मांदे पड़ जाना। जाड़ा क्या है मौत है, और 'निमोनिया' से मरनेवालों को मुरब्बे नहीं मिला करते।'

'मेरा डर मत करो। मैं तो बुलेल की खड्ड के किनारे मरूँगा। भाई कीरतसिंह की गोदी पर मेरा सिर होगा और हाथ के लगाये हुए आँगन के आम के पेड़ की छाया होगी।'

वज़ीरासिंह ने त्योरी चढ़ाकर कहा— क्या मरने-मराने की बात लगाई है!

इतने में एक कोने से पंजाबी गीत की आवाज़ सुनाई दी। सारी ख़दक गीत से गूँज उठी और सिपाही फिर ताजे हो गये, मानो चार दिन से सोते और मौज ही करते रहे हों।

[३]

दो पहर रात हो गई है। सन्नाटा छाया हुआ है। बोधासिंह खाली बिसकुटों के तीन टीनों पर अपने दोनों कम्बल बिछाकर और लहनासिंह के दो कम्बल और एक ब्रानकोट ओढ़कर सो रहा है। लहनासिंह पहरे पर खड़ा हुआ है। एक आँख खाईं के मुँह पर है और एक बोधासिंह के दुबले शरीर पर। बोधासिंह कराहा।

'क्यों बोधासिंह, भाई क्या है?'

'पानी पिला दो।'

लहनासिंह ने कटोरा उसके मुँह से लगाकर पूछा—कहो कैसे हो? पानी पीकर बोधा बोला—कँपनी छूट रही है। रोम-रोम में तार दौड़ रहे हैं। दाँत बज रहे हैं।

'अच्छा, मेरी जरसी पहन लो।'

'और तुम?'

'मेरे पास सिगड़ी है और मुझे गरमी लगती है। पसीना आ रहा है।'

'ना, मैं नहीं पहनता, चार दिन से तुम मेरे लिए—'

'हाँ, याद आई। मेरे पास दूसरी गरम जरसी है। आज सवेरे ही आई है। विलायत से मेमें बुन बुनकर भेज रही हैं। गुरु उनका भला करें।' यों कहकर लहना अपना कोट उतारकर जरसी उतारने लगा।

'सच कहते हो?'

'और नहीं झूठ ?' यों कहकर नाहीं करते बोधा को उसने जबरदस्ती जरसी पहना दी और आप ख़ाकी कोट और जीन का कुरता पहनकर पहरे पर आ खड़ा हुआ। मेम की जरसी की कथा केवल कथा थी।

आधा घण्टा बीता। इतने में खाई के मुँह से आवाज आई—'सूबेदार हजारासिंह।'

'कौन ? लपटन साहब ? हुकुम हुजूर !' कहकर सूबेदार तनकर फौजी सलाम करके सामने हुआ।

'देखो, इसी दम धावा करना होगा। मील भर की दूरी पर पूरब के कोने में एक जर्मन खाई है। उसमें पचास से ज्यादा जर्मन नहीं हैं। इन पेडों के नीचे-नीचे दो खेत काटकर रास्ता है। तीन-चार घुमाव है। जहाँ मोड़ है, वह पन्द्रह जवान खड़े कर आया हूँ। तुम यहाँ दस आदमी छोड़कर सबको साथ ले उनसे जा मिलो। खन्दक छीनकर वहीं जब तक दूसरा हुक्म न मिले डटे रहो। हम यहाँ रहेगा।'

'जो हुक्म।'

चुपचाप सब तैयार हो गये। बोधा भी कम्बल उतारकर चलने लगा। तब लहनासिंह ने उसे रोका। लहनासिंह आगे हुआ, तो बोधा के बाप सूबेदार ने उँगली से बोधा की ओर इशारा किया। लहनासिंह समझकर चुप हो गया। पीछे दस आदमी कौन रहें, इस पर बडी हुज्जत हुई। कोई रहना न चाहता था। समझा-बुझाकर सूबेदार ने मार्च किया। लपटन साहब लहना की सिगडी के पास मुँह फेरकर खडे हो गये और जेब से सिगरेट निकालकर सुलगाने लगे। दस मिनट बाद उन्होंने लहना की ओर हाथ बढाकर कहा—'लो, तुम भी पियो।'

आँख मारते-मारते लहनासिंह सब समझ गया। मुँह का भाव छिपाकर बोला—'लाओ, साहब।' हाथ आगे करते ही उसने सिगडी के उजाले में साहब का मुँह देखा, बाल देखे, तब उसका माथा ठनका। लपटन साहब के पट्टियोंवाले बाल एक दिन में कहाँ उड़ गये और उनकी जगह क़ैदियों के से कटे हुए बाल कहाँ से आ गये ?

शायद साहब शराब पिये हैं और उन्हें बाल कटवाने का मौक़ा मिल

गया न! लहनासिंह ने जाँचना चाहा। लपटन साहब पाँच वर्ष से उनकी रेजिमेंट में थे।

'क्यों साहब, हम लोग हिन्दुस्तान कब जायँगे?'

'लड़ाई ख़त्म होने पर। क्यों, क्या यह देश पसन्द नहीं?'

'नहीं साहब, शिकार के वे मजे यहाँ कहाँ? याद है, पारसाल नकली लड़ाई के पीछे हम आप जगाधरी के जिले में शिकार करने गये थे—'हाँ, हाँ—वहीं, जब आप खोतेॐ पर सवार थे और आपका ख़ानसामा अब्दुल्ला रास्ते के एक मन्दिर में जल चढाने को रह गया था? 'बेशक, पाजी कहीं का'—सामने से वह नीलगाय निकली कि ऐसी बड़ी मैंने कभी न देखी थी। और आपकी एक गोली कन्धे में लगी और पुट्ठे में निकली। ऐसे अफ़सर के साथ शिकार खेलने में मजा है। क्यों साहब, शिमले से तैयार होकर उस नीलगाय का सिर आ गया था न? आपने कहा था कि रेजिमेंट की मेस में लगायेंगे। 'हो, पर हमने वह विलायत भेज दिया' ऐसे बड़े बड़े सींग। दो-दो फुट के तो होंगे?

'हाँ, लहनासिंह, दो फुट चार इंच के थे, तुमने सिगरेट नहीं पिया था?'

पीता हूँ साहब, दियासलाई ले आता हूं' कहकर लहनासिंह खन्दक में घुसा। अब उसे सन्देह नहीं रहा था। उसने झटपट निश्चय कर लिया कि क्या करना चाहिए।

अँधेरे मे किसी सोनेवाले से वह टकराया।

'कौन? वजीरासिंह?'

'हाँ, क्यों लहना? क्या क़यामत आ गई? जरा तो आँख लगने दी होती?'

[४]

'होश में आओ। क़यामत आई है और लपटन साहब की वर्दी पहनकर आई है।'

'क्या?'

'लपटन साहब या तो मारे गये हैं या क़ैद हो गये हैं। उनकी वर्दी पहन

ॐ गधा।

कर यह कोई जर्मन आया है। सूबेदार ने इसका मुँह नहीं देखा। मैंने देखा है और बातें की हैं। सौहराक्ष साफ़ उर्दू बोलता है, पर किताबी उर्दू। और मुझे पीने को सिगरेट दिया है ?'

'तो अब ?'

अब मारे गये। धोखा है। सूबेदार होरा कीचड़ में चक्कर काटते फिरेंगे और यहाँ खाई पर धावा होगा। उधर उन पर खुले में धावा होगा। उठो, एक काम करो। पल्टन के पैरों के निशान देखते-देखते दौड़ जाओ। अभी बहुत दूर न गये होंगे। सूबेदार से कहो कि एकदम लौट आवें। खन्दक की बात झूठ है चले जाओ, खन्दक के पीछे से निकल जाओ। पत्ता तक न खुडके। देर मत करो।'

'हुकुम तो यह है कि यहीं—

'ऐसी तैसी हुकुम की! मेरा हुकुम—जमादार लहनासिंह जो इस वक्त यहाँ सबसे बड़ा अफसर है उसका हुकुम है। मैं लपटन साहब की ख़बर लेता हूँ।'

'पर यहाँ तो तुम आठ ही हो।'

'आठ नहीं, दस लाख। एक-एक अकालिया सिख सवा लाख के बराबर होता है। चले जाओ।'

लौटकर खाई के मुहाने पर लहनासिंह दीवार से चिपक गया। उसने देखा कि लपटन साहब ने जेब से बेल के बराबर तीन गोले निकाले। तीनों को तीन जगह खन्दक की दीवारों में घुसेड़ दिया और तीनों में एक तार सा बाँध दिया। तार के आगे सूत की एक गुत्थी थी, जिसे सिगड़ी के पास रखा। बाहर की तरफ़ जाकर एक दियासलाई जलाकर गुत्थी पर रखने..

बिजली की तरह दोनों हाथों से उल्टी बन्दूक को उठाकर लहनासिंह ने साहब की कुहनी पर तानकर दे मारा। धमाके के साथ साहब के हाथ से दियासलाई गिर पड़ी। लहनासिंह ने एक कुन्दा साहब की गर्दन पर मारा और साहब 'ऑख! मीन गौट्ट'† कहते हुए चित्त हो गये। लहनासिंह ने

---

* [illegible] (गाली)

† हाय! मेरे राम! (जर्मन)

तीन गोले बीनकर खदक के बाहर फेंके और साहब को घसीटकर सिगड़ी* के पास हटाया। जेबों की तलाशी ली। तीन चार लिफाफे और एक डायरी निकालकर उन्हें अपनी जेब के हवाले किया।

साहब की मूर्छा हटी। लहनासिंह हँसकर बोला—क्यों लपटन साहब? मिजाज कैसा है? आज मैंने बहुत बातें सीखीं। यह सीखा कि सिख सिगरेट पीते हैं। यह सीखा कि जगाधरी के जिले में नीलगायें होती हैं और उनके दो फुट चार इंच के सींग होते हैं। यह सीखा कि मुसलमान खानसामा मूर्त्तियों पर जल चढाते हैं और लपटन साहब खोते पर चढते हैं, पर यह तो कहो, ऐसी साफ उर्दू कहाँ से सीख आये? हमारे लपटन साहब तो बिना 'डैम' के पाँच लफ्ज भी नहीं बोला करते थे।

लहना ने पतलून की जेबों की तलाशी नहीं ली थी। साहब ने मानो जाड़े से बचाने के लिए, दोनों हाथ जेबों में डाले।

लहनासिंह कहता गया—चालाक तो बडे हो, पर माझे का लहना इतने बरस लपटन साहब के साथ रहा है। उसे चकमा देने के लिए चार आँखें चाहिए। तीन महीने हुए, एक तुरकी मौलवी मेरे गाँव में आया था। औरतों को बच्चे होने को तावीज बाँटता था और बच्चों को दवाई देता था। चौधरी के बड़ के नीचे मजा बिछाकर हुक्का पीता रहता था और कहता था कि जर्मनीवाले बडे पण्डित हैं। वेद पढ-पढकर उसमें से विमान चलाने की विद्या जान गये हैं। गौ को नहीं मारते। हिन्दुस्तान में आ जायेंगे तो गो-हत्या बंद कर देंगे। मंडी के बनियों को बहकाता था कि डाकखाने से रुपये निकाल लो, सरकार का राज्य जानेवाला है। डाक-बाबू पोल्हूराम भी डर गया था। मैंने मुल्लाजी की दाढी मूँड दी थी और गाँव से बाहर निकालकर कहा था कि जो मेरे गाँव में अब पैर रखा तो..

साहब की जेब में से पिस्तौल चला और लहना की जाँघ में गोली लगी। इधर लहना की हेनरी मार्टिनी के दो फायरों ने साहब की कपाल क्रिया कर दी। धड़ाका सुनकर सब दौड़ आये।

बोधा चिल्लाया—'क्या है?'

---

* [illegible]।

लहनासिंह ने उसे तो यह कहकर सुला दिया कि 'एक हडका हुआ कुत्ता आया था, मार दिया' और औरों से सब हाल कह दिया। सब बन्दूकें लेकर तैयार हो गये। लहना ने साफा फाड़कर घाव के दोनों तरफ पट्टियाँ कसकर बाँधीं। घाव मांस में ही था। पट्टियों के कसने से लहू निकालना बंद हो गया।

इतने में सत्तर जर्मन चिल्लाकर खाई में घुस पड़े। सिक्खों की बन्दूकों की बाढ ने पहले धावे को रोका। पर यहाँ थे आठ (लहनासिंह तक तककर मार रहा था, वह खड़ा था, और, और लेटे हुए थे) और वे सत्तर। अपने मुर्दा भाइयों के शरीर पर चढकर जर्मन आगे घुसे आते थे। थोडे से मिनटों में वे...

अचानक आवाज आई 'वाह गुरुजी की फतह! वाह गुरुजी का खालसा!' और धड़ाधड बन्दूकों के फायर जर्मन की पीठ पर पड़ने लगे। ऐन मौके पर जर्मन दो चक्की के पाटों के बीच में आ गये। पीछे से सूबेदार हजारासिंह के जवान आग बरसाते थे और सामने लहनासिंह के साथियों के संगीन चल रहे थे। पास आने पर पीछेवालों ने भी संगीन पिरोना शुरू कर दिया। एक किलकारी और—'अकाल सिक्खाँ दी फौज आई! वाह गुरुजी दा खालसा!! सत श्री अकाल पुरुष!!' और लडाई खतम हो गई। तिरसठ जर्मन या तो खेत रहे थे या कराह रहे थे। सिक्खों में पन्द्रह के प्राण गये। सूबेदार के दाहने कंधे में से गोली आर-पार निकल गई। लहनासिंह की पसली में एक गोली लगी। उसने घाव को खदक की गीली मिट्टी से पूर लिया और बाकी को साफा कसकर कमरबन्द की तरह लपेट लिया। और किसी को खबर न हुई कि लहना के दूसरा घाव भारी घाव लगा है।

लडाई के समय चाँद निकल आया था, ऐसा चाँद, जिसके प्रकाश से संस्कृत-कवियों का दिया हुआ 'क्षयी' नाम सार्थक होता है। और हवा ऐसी चल रही थी जैसी कि बाणभट्ट की भाषा में 'दन्तवीणोपदेशाचार्य्य' कहलाती। वजीरासिंह कह रहा था कि कैसे मन-मन-भर फ्रांस की भूमि मेरे बूटों से चिपक रही थी जब मैं दौड़ा-दौडा सूबेदार के पीछे गया था। सूबेदार लहनासिंह से सारा हाल सुन और कागजात पाकर वे उसकी तुरत-बुद्धि को सराह रहे थे और कह रहे थे कि तू न होता तो आज सब मारे जाते।

इस लड़ाई की आवाज़ तीन मील दाहिनी ओर की खाईंवालों ने सुन ली थी। उन्होंने पीछे टेलीफोन कर दिया था। वहाँ से झटपट दो डाक्टर और दो बीमार ढोने की गाड़ियाँ चलीं, जो कोई डेढ़ घण्टे के अन्दर-अन्दर आ पहुँचीं। फील्ड अस्पताल नज़दीक था। सुबह होते-होते वहाँ पहुँच जायँगे, इसलिए मामूली पट्टी बाँधकर एक गाड़ी में घायल लिटाये गये और दूसरी में लाशें रखी गईं। सूबेदार ने लहनासिंह की जाँघ में पट्टी बँधवानी चाही ; पर उसने यह कहकर टाल दिया कि थोड़ा घाव है, सवेरे देखा जायगा। बोधासिंह ज्वर से बर्रा रहा था। वह गाड़ी में लिटाया गया। लहना को छोड़कर सूबेदार जाते नहीं थे। यह देख लहना ने कहा—'तुम्हें बोधा कि कसम है और सूबेदारनीजी की सौगन्ध है, जो इस गाड़ी में न चले जाओ।'

'और तुम ?'

'मेरे लिए वहाँ पहुँचकर गाड़ी भेज देना। और जर्मन मुर्दों के लिए भी तो गाड़ियाँ आती होंगी। मेरा हाल बुरा नहीं है। देखते नहीं, मैं खड़ा हूँ ? वज़ीरासिंह मेरे पास ही है।'

'अच्छा, पर—'

'बोधा गाड़ी पर लेट गया ? भला। आप भी चढ़ जाओ। सुनिए तो, सूबेदारनी होरा को चिट्ठी लिखो तो मेरा मत्था टेकना लिख देना और जब-जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उसने कहा था, वह मैंने कर दिया।

गाड़ियाँ चल पड़ी थीं। सूबेदार ने चढ़ते-चढ़ते लहना का हाथ पकड़कर कहा—'तैने मेरे और बोधा के प्राण बचाये हैं। लिखना कैसा ! साथ ही घर चलेंगे। अपनी सूबेदारनी को तू ही कह देना। उसने क्या कहा था ?'

'अब आप गाड़ी पर चढ़ जाओ। मैंने जो कहा, वह लिख देना।'

गाड़ी के जाते ही लहना लेट गया—'वज़ीरा पानी पिला दे और मेरा कमरबन्द खोल दे। तर हो रहा है।'

[५]

मृत्यु के कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ़ हो जाती है। जन्म भर की घटनाएँ एक एक करके सामने आती हैं। सारे दृश्यों के रंग साफ़ होते हैं, समय की धुन्ध बिल्कुल उन पर से हट जाती है।'

× × × ×

लहनासिंह बारह वर्ष का है। अमृतसर में मामा के यहाँ आया हुआ है। दहीवाले के यहाँ, सब्ज़ीवाले के यहाँ, हर कहीं उसे एक आठ वर्ष की लड़की मिल जाती है। जब वह पूछता है, तेरी कुड़माई हो गई है? तब 'धत्' कहकर वह भाग जाती है। एक दिन उसने वैसे ही पूछा तो उसने कहा—'हाँ, कल हो गई, देखते नहीं यह रेशम के फूलोंवाला सालू?' सुनते ही लहनासिंह को दुःख हुआ। क्रोध हुआ। क्यों हुआ?

'वजीरासिंह पानी पिला दे।'

× × × ×

पचीस वर्ष बीत गये। अब लहनासिंह नं० ७७ रैफल्स में जमादार हो गया है। उस आठ वर्ष की कन्या का ध्यान ही न रहा। न मालूम वह कभी मिली थी, या नहीं। सात दिन की छुट्टी लेकर ज़मीन के मुक़द्दमे की पैरवी करने वह अपने घर गया। वहाँ रेजिमेण्ट के अफ़सर की चिट्ठी मिली कि फ़ौज लाम पर जाती है। फ़ौरन चले आओ। साथ ही सूबेदार हजारीसिंह की चिट्ठी मिली कि मैं और बोधासिंह भी लाम पर जाते हैं। लौटते हुए हमारे घर होते जाना। साथ चलेंगे। सूबेदार का गाँव रास्ते में पड़ता था और सूबेदार उसे बहुत चाहता था। लहनासिंह सूबेदार के यहाँ पहुँचा।

जब चलने लगे, तब सूबेदार 'बेड़े'* में से निकलकर आया। बोला—लहना सूबेदारनी तुमको जानती हैं। बुलाती हैं। जा मिल आ। लहनासिंह भीतर पहुँचा। सूबेदारनी मुझे जानती हैं? कब से, रेजिमेण्ट के क्वार्टरों में तो कभी सूबेदार के घर के लोग रहे नहीं। दरवाज़े पर जाकर 'मत्था टेकना' कहा। असीस सुनी। लहनासिंह चुप।

'मुझे पहचाना?'

'नहीं।'

'तेरी कुड़माई हो गई!—धत्—कल हो गई—देखते नहीं रेशमी बूटों-वाला सालू—अमृतसर में—'

भावों की टकराहट से मूर्छा खुली। करवट बदली। पसली का घाव बह निकला। ... ठ को

* [illegible]।

'वज़ीरा, पानी पिला'—'उसने कहा था ।'

लें: स्वप्न चल रहा है, सूबेदारनी कह रही है—'मैंने तेरे को आते ही पहचान और लया । एक काम कहती हूँ । मेरे तो भाग फूट गये । सरकार ने बहादुरी का खिताब दिया है, लायलपुर में ज़मीन दी है, आज नमकहलाली का मौक़ा आया है । पर सरकार ने हम तीमियों[1] की एक घँघरिया पलटन क्यों न बना दी जो मैं भी सूबेदारजी के साथ चली जाती ? एक बेटा है । फौज में भर्ती हुए उसे एक ही बरस हुआ । उसके पीछे चार और हुए, पर एक भी नहीं जिया ।' सूबेदारनी रोने लगी—'अब दोनों जाते हैं । मेरे भाग ! तुम्हें याद है, एक दिन टाँगेवाले का घोड़ा दहीवाले की दुकान के पास बिगड़ गया था । तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाये थे । आप घोड़े की लातों में चले गये थे और मुझे उठाकर दुकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था । ऐसे ही इन दोनों को बचाना । यह मेरी भिक्षा है । तुम्हारे आगे मैं आँचल पसारती हूँ ।'

रोती रोती सूबेदारनी ओबरी[2] में चली गई । लहना भी आँसू पोंछता हुआ बाहर आया ।

'वज़ीरासिंह, पानी पिला'—उसने कहा था ।

लहना का सिर अपनी गोद में रखे वज़ीरासिंह बैठा है । जब माँगता है, तब पानी पिला देता है । आध घण्टे तक लहना चुप रहा, फिर बोला—'कौन ? कीरतसिंह ?'

वज़ीरा ने कुछ समझकर कहा—'हाँ ।'

'भइया, मुझे और ऊँचा कर ले । अपने पट्ट[3] पर मेरा सिर रख ले ।'

'हाँ, अब ठीक है । पानी पिला दे । बस अब के हाड़[4] में यह आम खूब फलेगा । चाचा भतीजा दोनों यहीं बैठकर आम खाना । जितना बड़ा तेरा भतीजा है उतना ही यह आम है । जिस महीने उसका जन्म हुआ था, उसी-महीने में [illegible] के दिन थे, भूमि के

[illegible] । [illegible] हरे-भरे थे, नदी नाले [illegible] रहे थे ।

[illegible] करके प्रफुल्लित मन से [illegible]

[illegible] के लिए बड़े [illegible] ने [illegible]——

। [illegible] पर [illegible] थी । [illegible] के [illegible] ।

कुछ दिन पीछे लोगों ने अखबारों में पढ़ा—फ्रांस और बेलजियम—६८ वीं सूची—मैदान में घावों से मरा—नं० ७७ सिख राइफल्स जमादार लहनासिंह।

प्रश्नावली—

१ लहनासिंह के चरित्र से उसके निम्नलिखित गुणों को प्रमाणित कीजिए :—
प्रेम, बलिदान, वीरता, सतर्कता, वचन-वीरता।

२ लहनासिंह ने सूबेदारजी के आदेश का पालन इतने आत्मत्याग से क्यों किया?

३ लहनासिंह को कैसे मालूम हुआ कि लफ्टन साहब उसका असली अफसर नहीं बल्कि जर्मन जासूस ने लफ्टन का भेस रख लिया है?

प्रसंग के साथ इन अवतरणों का अर्थ लिखिए —

(क) आँख मारते-मारते लहनासिंह सब समझ गया।

(ख) होश में आओ। क़यामत आई और लफ्टन साहब की वर्दी पहनकर आई है।

(ग) ऐन मौके पर जर्मन दो चक्की के पाटों के बीच आ गये।

(घ) हाँ याद आई, मेरे पास दूसरी गरम जरसी है, आज सवेरे ही आई है।

मृत्यु के कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ हो जाती है। जन्म भर की घटनाएँ एक-एक करके सामने आती हैं। सारे दृश्यों के रंग साफ होते हैं, समय की धुन्ध बिलकुल उन पर से हट जाती है। क्या यह कथन सत्य है। प्रमाण दो।

(अ) इस गल्प में कुछ इस बात का भी पता चलता है कि लहनासिंह की शादी हुई या नहीं।

(ब) लहनासिंह की अपनी मृत्यु के विषय में क्या लालसा थी? वह कैसे पूरी हुई?

निम्नलिखित मुहावरों का अर्थ लिखो — [illegible] गई—दगात नहीं।
[illegible], कुड़माई, गनीम, गैबी गोला, [illegible]

—।। [illegible] नदी। पसली का [illegible] [illegible] को

राजपुतानी का प्रायश्चित्त

श्री 'सुदर्शन'

(सन् १८९६)

[आपका जन्म स्थान स्यालकोट का है। आपका वास्तविक नाम पण्डित बद्रीनाथ है। आपने उर्दू में अधिक रचनाएँ की हैं। पर हिन्दी में भी आपके कई नाटक, गल्पसंग्रह प्रकाशित हुए हैं। कहानी लेखकों में आप अग्रगण्य माने जाते हैं। आपकी भाषा सरल, मनोरञ्जक और मुहावरेदार होती है। आप वर्णन करने में वर्ण्य विषय की प्रतिमूर्ति खड़ी कर देते हैं। आपकी कहानियों का विषय सामाजिक समस्या होती है।]

[१]

कुँवर वीरमदेव कलानौर के राजा हरदेवसिंह के पुत्र थे, तलवार के धनी और पूरे रणवीर। प्रजा उन पर प्राण देती थी और पिता देख-देखकर फूला न समाता था। वीरमदेव ज्यों-ज्यों प्रजा की दृष्टि में सर्वप्रिय होते जाते थे, उनके सद्गुण बढ़ते जाते थे। प्रातःकाल उठकर स्नान करना, निर्धनों को दान देना, यह उनका नित्यकर्म था, जिसमें कभी चूक नहीं होती थी। वे मुस्कराकर बातें करते थे और चलते-चलते बाट में कोई स्त्री मिल जाती, तो नेत्र नीचे करके चले जाते। उनका विवाह नरपुर के राजा की पुत्री राजवती से हुआ था। राजवती केवल देखने में ही रूपवती न थी, वरन् शील और गुणों में भी अनुपम थी। जिस प्रकार वीरमदेव पर पुरुष मुग्ध थे, उसी प्रकार राजवती पर स्त्रियाँ लट्टू थीं। कलानौर की प्रजा उनको 'चन्द्र-सूर्य की जोड़ी' कहा करती थी।

वर्षा के दिन थे, भूमि के चप्पे-चप्पे पर से सुन्दरता निछावर हो रही थी। वृक्ष हरे-भरे थे, नदी नाले उमड़े हुए थे। वीरमदेव रणक्षेत्र पर विजय प्राप्त करके प्रफुल्लित मन से वापस आ रहे थे। सम्राट् अलाउद्दीन ने उनके स्वागत के लिए बड़े समारोह से तैयारियाँ की थीं। नगर के बाजार सजे हुए थे। छतों पर स्त्रियाँ थीं। दरबार के अमीर अगवानी को उपस्थित थे। वीरम-

देव उत्फुल्ल वदन से सलामें लेते और दर्बारियों से हाथ मिलाते हुए दर्बार मे पहुँचे। उनका तेजस्वी मुखमण्डल और विजयी चाल-ढाल देखकर अलाउद्दीन का हृदय दहल गया, परन्तु वह प्रकट हँसकर बोला—'वीरमदेव! तुम्हारी वीरता ने हमारे मन में घर कर लिया है। इस विजय पर तुमको बधाई है।'

वीरमदेव को इससे प्रसन्नता नहीं हुई। हन्त! यह बात किसी सजातीय के मुख से निकलती, वह बधाई किसी राजपूत की ओर से होती, तो कैसा आनन्द होता! विचार आया, मैंने क्या किया? वीरता से विजय प्राप्त की, परन्तु दूसरे के लिए। युद्ध में विजयी, परन्तु सिर झुकाने के लिए। इस विचार से मन मे ग्लानि उत्पन्न हुई। परन्तु आँख ऊँची की तो दर्बारी उनकी ओर ईर्ष्या से देख रहे थे और आदर-पुरस्कार पाँवों में बिछ रहा था। वीरमदेव ने सिर झुकाकर उत्तर दिया—'हजूर का अनुग्रह है, मैं तो एक निर्बल व्यक्ति हूँ।'

बादशाह ने कहा—'नहीं तुमने वास्तव में वीरता का काम किया है। हम तुम्हें जागीर देना चाहते हैं।'

वीरमदेव ने कहा—'मेरी एक प्रार्थना है।'

'कहो।'

कैदियों में एक नवयुवक राजपूत जीतसिंह है, जो पठानों की ओर से हमारे साथ लड़ा था। वह है तो शत्रु, परन्तु अत्यन्त वीर है। मैं उसे अपने पास रखना चाहता हूँ।'

अलाउद्दीन ने मुस्कराकर उत्तर दिया—'मामूली बात है, वह कैदी हमने तुम्हें बख्शा।'

[२]

दो वर्ष के पश्चात् वीरमदेव कलानौर को वापस लौटे, तो मन उमङ्गों से भरा हुआ था। राजवती की भेंट के हर्ष में पिछले दुःख सब भूल गये। तेज पक्षी की नाईं उमङ्गों के आकाश मे उड़े चले जाते थे। मातृ-[illegible] हुए थे। जिस मिट्टी से शरीर बना है, वह फिर आँखों के

सम्मुख होगी। मित्र-बन्धु स्वागत करेंगे, बधाइयाँ देंगे। उनके शब्द जिह्वा से नहीं, हृदय से निकलेंगे। पिता प्रसन्न होंगे, स्त्री द्वार पर खड़ी होगी।

ज्यों-ज्यों कलानौर निकट आ रहा था, हृदय की आग भड़क रही थी। स्वदेश का प्रेम हृदय पर जादू का प्रभाव डाल रहा था। मानो पाँवों को मिट्टी की जञ्जीर खींच रही थी। एक पड़ाव शेष था कि वीरमदेव ने जीतसिंह से हँसकर कहा 'आज हमारी स्त्री बहुत व्याकुल हो रही होगी।'

जीतसिंह ने सुना, तो चौंक पड़ा और आश्चर्य से बोला—आप विवाहित हैं क्या ?

वीरमदेव ने बेपर्वाही से उत्तर दिया, 'हाँ, मेरे विवाह को पाँच वर्ष हो गये।'

जीतसिंह का चेहरा लाल हो गया। कुछ क्षणों तक वह चुप रहा, परन्तु फिर न सह सका, क्रोध से चिल्लाकर बोला—बड़े हृदयशून्य हो, मैं तुम्हें ऐसा न समझता था।

वीरमदेव कल्पना के जगत् में सुख के महल बना रहे थे। यह सुनकर उनका स्वप्न टूट गया। घबराकर बोले—'जीतसिंह यह क्या कहते हो !'

जीतसिंह अकडकर खड़ा हो गया, और तनकर बोला—'समरभूमि में तुमने पराजय दी है, परन्तु वचन निबाहने में तुम मुझसे बहुत पीछे हो।'

'बाल्यावस्था में मेरी तुम्हारी प्रतिज्ञा हुई थी। वह प्रतिज्ञा मेरे हृदय में वैसी की वैसी बनी हुई है, परन्तु तुमने अपने पतित हृदय की तृप्ति के लिए नया बाग़ और नया पुष्प चुन लिया है। अब से पहले मैं समझता था कि मैं तुमसे पराजित हुआ, परन्तु अब मेरा सिर ऊँचा है। क्योंकि तुम मुझसे कई गुना अधिक नीचे हो। पराजय साधारण लज्जा है, परन्तु प्रेम की प्रतिज्ञा को पूरा न करना पतन का कारण है।'

वीरमदेव यह वक्तृता सुनकर सन्नाटे में आ गये और आश्चर्य से [illegible] को 'तुम कौन हो ! मैंने तुमको अभी तक नहीं पहचाना।'

जीतसिंह कुछ समय के लिए शान्त रहा और फिर धीरे से बोला—'मैं मैं कुलवन्ता हूँ। [illegible]

वीरमदेव के नेत्रों से पर्दा हट गया, और उनको वह अतीत काल स्म[illegible]

देव उत्फुल्ल वदन से सलामें लेते और दर्बारियों से हाथ मिलाते हुए दर्बार में पहुँचे। उनका तेजस्वी मुखमण्डल और विजयी चाल ढाल देखकर अलाउद्दीन का हृदय दहल गया, परन्तु वह प्रकट हँसकर बोला—'वीरमदेव! तुम्हारी वीरता ने हमारे मन में घर कर लिया है। इस विजय पर तुमको बधाई है।'

वीरमदेव को इससे प्रसन्नता नहीं हुई। हन्त!! यह बात किसी सजातीय के मुख से निकलती, वह बधाई किसी राजपूत की ओर से होती, तो कैसा आनन्द होता! विचार आया, मैंने क्या किया! वीरता से विजय प्राप्त की, परन्तु दूसरे के लिए। युद्ध में विजयी, परन्तु सिर झुकाने के लिए। इस विचार से मन में ग्लानि उत्पन्न हुई। परन्तु आँख ऊँची की तो दर्बारी उनकी ओर ईर्ष्या से देख रहे थे और आदर-पुरस्कार पाँवों में बिछ रहा था। वीरमदेव ने सिर झुकाकर उत्तर दिया—'हजूर का अनुग्रह है, मैं तो एक निर्बल व्यक्ति हूँ।'

बादशाह ने कहा—'नहीं तुमने वास्तव में वीरता का काम किया है। हम तुम्हें जागीर देना चाहते हैं।'

वीरमदेव ने कहा—'मेरी एक प्रार्थना है।'

'कहो।'

क़ैदियों में एक नवयुवक राजपूत जीतसिंह है, जो पठानों की ओर से हमारे साथ लड़ा था। वह है तो शत्रु, परन्तु अत्यन्त वीर है। मैं उसे अपने पास रखना चाहता हूँ।'

अलाउद्दीन ने मुस्कराकर उत्तर दिया—'मामूली बात है, वह क़ैदी हमने तुम्हें बख्शा।'

[२]

दो वर्ष के पश्चात् वीरमदेव कलानौर को वापस लौटे, तो मन उमङ्गों से भरा हुआ था। राजवती की भेंट के हर्ष में पिछले दुःख सब भूल गये। तेज ...ले पक्षी की नाईं उमङ्गों के आकाश में उड़े चले जाते थे। मातृ- ...दर्शन होंगे। जिस मिट्टी से शरीर बना है, वह फिर आँखों के

सम्मुख होगी। मित्र-बन्धु स्वागत करेंगे, बधाइयाँ देंगे। उनके शब्द जिह्वा से नहीं, हृदय से निकलेंगे। पिता प्रसन्न होंगे, स्त्री द्वार पर खड़ी होगी।

ज्यों-ज्यों कलानौर निकट आ रहा था, हृदय की आग भड़क रही थी। स्वदेश का प्रेम हृदय पर जादू का प्रभाव डाल रहा था। मानो पावों को मिट्टी की जञ्जीर खींच रही थी। एक पड़ाव शेष था कि वीरमदेव ने जीतसिंह ने हँसकर कहा 'आज हमारी स्त्री बहुत व्याकुल हो रही होगी।'

जीतसिंह ने सुना, तो चौंक पड़ा और आश्चर्य से बोला—आप विवाहित हैं क्या?

वीरमदेव ने बेपर्वाही से उत्तर दिया, 'हाँ, मेरे विवाह को पाँच वर्ष हो गये।'

जीतसिंह का चेहरा लाल हो गया। कुछ क्षणों तक वह चुप रहा, परन्तु फिर न सह सका, क्रोध से चिल्लाकर बोला—बड़े हृदयशून्य हो, मैं तुम्हें ऐसा न समझता था।

वीरमदेव कल्पना के जगत् में सुख के महल बना रहे थे। यह सुनकर उनका स्वप्न टूट गया। घबराकर बोले—'जीतसिंह यह क्या कहते हो?'

जीतसिंह अकड़कर खड़ा हो गया, और तनकर बोला—'समरभूमि में तुमने पराजय दी है, परन्तु वचन निबाहने में तुम मुझसे बहुत पीछे हो।'

'बाल्यावस्था में मेरी तुम्हारी प्रतिज्ञा हुई थी। वह प्रतिज्ञा मेरे हृदय में वैसी की वैसी बनी हुई है, परन्तु तुमने अपने पतित हृदय की तृप्ति के लिए नया बाग़ और नया पुष्प चुन लिया है। अब से पहले मैं समझता था कि मैं तुमसे पराजित हुआ हूँ परन्तु अब मेरा सिर ऊँचा है। क्योंकि तुम मुझसे कई गुना अधिक नीचे हो। पराजय साधारण लज्जा है, परन्तु प्रेम की प्रतिज्ञा को पूरा न करना पतन का कारण है।'

वीरमदेव यह वक्तृता सुनकर सन्नाटे में आ गये और आश्चर्य से ... को 'तुम कौन हो! मैंने तुमको अभी तक नहीं पहचाना।'

जीतसिंह कुछ समय के लिए शान्त रहा और फिर धीरे से बोला—मिरा ... मैं कुलच्छणा हूँ। ...ने,

वीरमदेव के नेत्रों से पर्दा हट गया, और उनको वह अतीत काल स्म...

हुआ, जब वे दिन-रात सुलक्षणा के साथ खेलते रहा करते थे। इकट्ठे फूल चुनते, इकट्ठे मन्दिर में जाते और इकट्ठे पूजा करते थे। चन्द्रदेव की शुभ्र-ज्योत्स्ना में वे एक स्वर मे मधुर गीत गाया करते थे और प्रेम की प्रतिज्ञाएँ किया करते थे। परन्तु अब वे दिन बीत चुके थे, सुलक्षणा और वीरमदेव के मध्य में एक विशाल नदी का पाट था।

सुलक्षणा ने कहा, 'वीरमदेव! प्रेम के पश्चात् दूसरा दर्जा प्रतिकार का है। तुम प्रेम का अमृत पी चुके हो, अब प्रतिकार के विषपान के लिए अपने होठों को तैय्यार करो।'

वीरमदेव उत्तर में कुछ कहा चाहते थे कि सुलक्षणा क्रोध से होठ चबाती हुई खेमे से बाहर निकल गई, और वीरमदेव चुपचाप बैठे रह गये।

दूसरे दिन कलानौर के दुर्ग से घनगर्ज शब्द ने नगरवासियों को सूचना दी, वीरमदेव आते हैं। स्वागत के लिए तैयारियाँ करो।

हरदेवसिंह ने पुत्र का मस्तक चूमा। राजवती आरती का थाल लेकर द्वार पर आई कि वीरमदेव ने वीरता से झूमते हुए दरवाजे में प्रवेश किया। परन्तु अभी आरती न उतारने पाई थी कि एक बिल्ली टाँगों के नीचे से निकल गई, और थाल भूमि पर आ रहा। राजवती का हृदय धड़क गया, और वीरमदेव को पूर्व घटना याद आ गई।

[३]

अभी सफलगढ की विजय पुरानी न हुई थी, अभी वीरमदेव की वीरता की साख लोगों को भूलने न पाई थी कि कलानौर को अलाउद्दीन के सिपाहियों ने घेर लिया। लोग चकित थे, परन्तु वीरमदेव जानते थे कि यह आग सुलक्षणा की लगाई हुई है।

कलानौर यद्यपि साधारण दुर्ग था, परन्तु इस समय वीरमदेव ने मन नहीं दिया। सफलगढ की नूतन विजय से उनके साहस बढ़े हुए थे। अला-दो पर उनको असीम क्रोध था। मैंने उसकी कितनी सेवा की, इतनी कठिन यात्रा करके पठानों से दुर्ग छीनकर दिया, अपने प्राणों के प्यारे राजपूतों का रक्त पानी की तरह बहा दिया और उसके बदले ों के स्थान मे, यह अपमान प्राप्त हुआ है।

से भरा

परन्तु राजवती को सफलगढ़ की विजय और वीरमदेव के आगमन से इतनी प्रसन्नता न हुई थी, जितनी आज हुई। आज उसके नेत्रों में आनन्द की झलक थी और चेहरे पर अभिमान तथा गौरव का रंग। वीरमदेव भूले हुए थे, अलाउद्दीन ने उन्हें शिक्षा देनी चाही है। पराधीनता की विजय से स्वाधीनता की पराजय सहस्र गुना अच्छी है। पहले उसे ग्लानियुक्त प्रसन्नता थी—अब हर्ष युक्त भय। पहले उसका मन रोता था, परन्तु आँखें छिपाती थीं। आज उसका हृदय हँसता था और आँखें मुस्कराती थीं। वह इठलाती हुई पति के सम्मुख गई और बोली—'क्या संकल्प है?'

वीरमदेव जोश और क्रोध से दीवाने हो रहे थे, झल्लाकर बोले—'मैं अलाउद्दीन के दाँत खट्टे कर दूँगा।'

राजवती ने कहा—'जीवननाथ! आज मेरे उजड़े हुए हृदय में आनन्द की नदी उमड़ी हुई है।'

'क्यों?'

'क्योंकि आज आप स्वाधीन राजपूतों की नाईं बोल रहे हैं। आज आप वे नहीं हैं, जो पन्द्रह दिन पहले थे। उस समय और आज में महान अन्तर हो गया है। उस दिन आप पराधीन वेतन ग्राही थे, आज एक स्वाधीन सिपाही हैं। उस दिन आप शाही प्रसन्नता के अभिलाषी थे, आज उसके समान स्वाधीन हैं। उस दिन आपको सुख-सम्पत्ति की आकांक्षा थी, आज आन की धुन है। उस समय आप नीचे जा रहे थे, आज आप ऊपर उठ रहे हैं।'

राजवती के यह गौरव भरे शब्द सुनकर वीरमदेव उछल पड़े, और राजवती को गले लगाकर बोले—'राजवती! तुमने मेरे मन में बिजली भर दी है। तुम्हारे ये शब्द रण में मेरे मन को उत्साह दिलाते हुए मुझे लड़ायेंगे। दुर्ग तुम्हारे अर्पण है।'

दुन्दुभि पर चोट पड़ी। राजपूतों के दिल खिल गये। माताओं ने पुत्रों को हँसते हुए विदा किया। बहनों ने भाइयों को तलवारें बाँधीं। स्त्रियाँ स्वामियों से हँस हँसकर गले मिलीं, परन्तु मन में उद्विग्नता भरी हुई थी! कौन जाने, [illegible] मिलाप हो या न हो।

दुर्ग के कुछ अन्तर नदी बहती थी। राजपूत उसके तट पर डट गए। सेनापति की सम्मति थी कि हमको नदी के इस पार रहकर शाही सेना पार होने से रोकना चाहिए, परन्तु वीरमदेव जोश में पागल हो रहे थे, उन्होंने कहा 'हम नदी के उस पार शाही सेना से युद्ध करेंगे और सिद्ध कर देंगे कि राजपूतों का बाहुबल शाही सेना की शक्ति से कहीं अधिक है।'

राजपूतों ने महादेव की जय के जयकारे बुलाते हुए नदी को पार किया, और वे शाही सेना से जुट गये।

राजपूत शाही सेना की अपेक्षा थोड़े थे, परन्तु उनके साहस बढ़े हुए थे और राजपूत बराबर आगे बढ़ रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था, मानो शाही सेना पर राजपूतों की निर्भीकता और वीरता ने जादू कर दिया है। परन्तु यह अवस्था अधिक समय तक स्थिर न रही। शाही सेना राजपूतों की अपेक्षा कई गुना अधिक थी, इसलिए संध्या होते-होते पासा पलट गया। राजपूतों को नदी के इस पार आना पड़ा।

इससे वीरमदेव को बहुत आघात पहुँचा। उन्होंने रात को एक ओजस्विनी वक्तृता दी, और राजपूतों के पूर्वजों के साखे सुना सुनाकर उनको उत्तेजित किया। इसका परिणाम यह हुआ कि राजपूतों ने क्रुद्ध सिंहों के समान तैरकर दूसरे दिन नदी पार करने की प्रतिज्ञा की, परन्तु मनुष्य कुछ सोचता है, परमात्मा की कुछ और इच्छा होती है। इधर यह विचार हो रहे थे, उधर, मुसलमान भी सोये न थे। उन्होंने कल्मा पढकर कसमें खाईं कि मरते-मरते मर जायँगे, परन्तु पीठ न दिखायेंगे। मुट्ठी भर राजपूतों से हारना सख्त कायरता है। लोग क्या कहेंगे यह 'लोग क्या कहेंगे' का भय लोगों से बहुत कुछ करवा देता है।

[४]

प्रातःकाल हुआ तो लड़ाके वीर फिर आमने-सामने हुए और लोहे से लोहा बजने लगा। वीरमदेव की तलवार गजब ढा रही थी। वे जिधर झुकते थे, परे के परे साफ़ कर देते थे। उनकी रणदक्षता से राजपूत सेना प्रसन्न हो ... परन्तु मुसलमानों के हृदय बैठे जाते थे। यह मनुष्य है या देव, जो ... भय खाता है, न घावों से भय खाता है, न घावों से पीड़ित होता

ंजधर झुकता है, विजयी लक्ष्मी फूलों की वर्षा करती है। जिधर जाता ंफलता साथ जाती है। इससे युद्ध करना लोहे के चने चबाना है। की सेना नदी के दूसरे पार चली गई।

वीरमदेव ने राजपूतों के बढे हुए साहस देखे, तो गद्गद् हो गये, सिपाहियों से कहा, मेरे पीछे-पीछे आ जाओ, और आप घोड़ा नदी में डाल दिया, इस साहस और वीरता पर मुसलमान आश्चर्यचकित हो रहे, परन्तु अभी उनका विस्मय कम न हुआ था कि राजपूत किनारे पर आ गये, और तुमुल संग्राम आरम्भ हो गया। मुसलमान सेना लड़ती थी रोटी के लिए, उसके पैर उखड़ गये। राजपूत लड़ते थे मातृभूमि के लिए, विजयी हुए। शाही सेना में भगदड़ मच गई, सिपाही समर-भूमि छोड़ने लगे। वीरमदेव के सिपाहियों ने पीछा करना चाहा, परन्तु वीरमदेव ने रोक दिया। भागते शत्रु पर आक्रमण करना वीरता नहीं पाप है। और जो यह नीच कर्म करेगा, मैं उसका मुँह देखना पसन्द न करूँगा।

विजयी सेना कलानौर में प्रविष्ट हुई। स्त्रियों ने उन पर पुष्प बरसाये लोगों ने रात को दीपमाला की। राजवती ने मुस्कराती हुई आँखों से वीरमदेव का स्वागत किया और उनके कण्ठ में विजयमाला डाली। वीरमदेव ने राजवती को गले लगा लिया और कहा—मुझे तुझ पर मान है, तू राजपूतनियों में सिरमौर है।

[५]

इस पराजय ने अलाउद्दीन के हृदय के भड़कते हुए अग्नि पर तेल का काम किया। उसने चारों ओर से सेना एकत्रित की और चालीस हजार मनुष्यों से कलानौर को घेर लिया। वीरमदेव अब मैदान में निकलकर लड़ना नीति विरुद्ध समझ दुर्ग में दुबक रहे।

दुर्ग बहुत दृढ और ऊँचा था। उसमें प्रवेश करना असम्भव था। शाही सेना ने पड़ाव डाल दिया और वह रसद के समाप्त होने की प्रतीक्षा करने लगी। सात मास व्यतीत हो गये, शाही सेना निरन्तर डेरा डाले पड़ी रही। दुर्ग में रसद घटने लगी। वीरमदेव ने राजवती से कहा—'प्रिये! अब क्या होगा!

राजवती बोली—आपका क्या विचार है ?

वीरमदेव ने उत्तर दिया—शाही सेना बहुत अधिक है। इससे छुटकारा पाना असम्भव है। परन्तु यह सब युद्ध मेरे लिए है, गेहूँ के साथ घुन भी पिसेंगे, यह क्यों ?

राजवती ने आश्चर्य से सिर ऊपर किया, और कहा—यह क्या जीवन नाथ ! क्या शाही सेना आपको पाकर दुर्ग की ईंट से ईंट न बजा देगी ?

वीरमदेव ने ठंडी साँस भरी और कहा—नहीं अलाउद्दीन कलानौर नहीं, वरन् मुझे चाहता है।

'और यदि वह आपको प्राप्त कर ले, तो दुर्ग पर अधिकार न जमाएगा ?'

'यह नहीं कहा जा सकता। हाँ, यदि मैं अपने आपको शाही सेना के अर्पण कर दूँ, तो सम्भव है, सेना हटा ली जाय।'

राजवती ने मन-ही मन सोचा, यदि कलानौर को भय नहीं, तो हमारे लिए इतना रक्त बहाने की क्या आवश्यकता है ?

वीरमदेव ने कहा--प्रिये ! तुम राजपूत स्त्री हो ?

'हाँ।'

'राजपूत मरने-मारने को उद्यत रहते हैं ?'

'हाँ।'

'जाति पर प्राण निछावर कर सकते हैं ?'

'हाँ।'

'मैं तुम्हारी वीरता की परीक्षा करना चाहता हूँ।'

राजवती ने सन्देह भरी दृष्टि से पति की ओर देखा और धीमे से कहा—मैं उद्यत हूँ।

वीरमदेव ने कुछ देर सोचकर कहा—इस युद्ध को समाप्त करना तुम्हारे वश में है।

राजवती समझ न सकी कि इसका क्या अभिप्राय है, चकित-सी होकर बोली—किस तरह ?

'तुम्हें अपनी सबसे अधिक प्रिय वस्तु बलिदान करनी होगी।'

'वह क्या ?'

मुझे गिरफ्तार करा दो, निर्दोष बच जायँगे।'

राजवती का कलेजा हिल गया। रोकर बोली—प्राणनाथ! मेरा मन कैसे मानेगा?

'राजपूत की आन निभाओ।'

राजवती ने कहा—'आपकी इच्छा सिर आँखों पर, परन्तु यह बोझ असह्य है।'

वीरमदेव ने प्रसन्न होकर राजवती को गले लगा लिया और मुँह चूमकर वे बाहर चले गये। राजवती भूमि पर लेटकर रोने लगी।

दो घंटे के पश्चात् दुर्ग में एक तीर गिरा, जिसके साथ कागज बँधा हुआ था। हरदेवसिंह ने खोलकर देखा। लिखा था—हम सिवाय वीरमदेव के कुछ नहीं चाहते। उसे पाकर हम तत्काल घेरा हटा लेंगे।

यह पढ़कर हरदेवसिंह का हृदय सूख गया। वीरमदेव को बुलाकर बोले—क्या तुमने मुसलमान सेना को कोई सन्देशा भेजा था?

हाँ, क्या उत्तर आया है?

हरदेवसिंह ने यह कागज वीरमदेव को दिया और वे फूट-फूटकर रोने लगे। रोते रोते बोले, 'बेटा! यह क्या? तुमने यह क्या सङ्कल्प किया है? अपने को गिरफ्तार करा दोगे?'

वीरमदेव ने उत्तर दिया, 'पिताजी! यह सब कुछ केवल मेरे लिए है। यदि आन का प्रश्न होता, दुर्ग की सरक्षा का प्रश्न होता, तो बच्चा-बच्चा न्योछावर हो जाता, मुझे आशंका न थी। परन्तु अब कैसे चुप रहूँ, यह सब रक्तपात केवल मेरे लिए है। यह नहीं सहा जाता।'

उस रात्रि के अन्धकार में दुर्ग का फाटक खुला और वीरमदेव ने अपने आप को मुसलमान सेनापति के अर्पण कर दिया। प्रातःकाल सेना ने दुर्ग का घेरा हटा लिया।

[६]

स्त्री का हृदय भी विचित्र वस्तु है। वह आज प्यार करती है, कल दुत्कार देती है! प्यार के खातिर स्त्री सब कुछ करने को तैयार हो जाती है, परन्तु प्रतिकार के लिए उससे भी अधिक भयानक कर्म कर बैठती है।

सुलक्षण असामान्य स्त्री थी। उसके हृदय में बाल्यावस्था से वीरमदेव की मूर्ति विराज रही थी। उसे प्राप्त करने के लिए वह पुरुष के वेष में पठानों के साथ मिलकर वीरमदेव की सेना से लड़ी और इस वीरता से लड़ी कि वीरमदेव उस पर मुग्ध हो गये। परन्तु जब उसे यह पता लगा कि मेरा स्वप्न भग हो गया है, तो उसने क्रोध के वशीभूत भयकर कर्म करने का निश्चय कर लिया। अनेक यत्नों के पश्चात् वह अलाउद्दीन के पास गई। अलाउद्दीन पर ~ हो गया। सुलक्षणा अतीव सुन्दरी थी। अलाउद्दीन विलासी मनुष्य था, गरी चल गई। सुलक्षणा ने जब देखा कि अलाउद्दीन वस म है, तो नहीं, प्रस्ताव किया कि यदि आप वीरमदेव का सिर मुझे मँगवा दें, तो मैं आपका आपके दीन को स्वीकार करूँगी। अलाउद्दीन ने इसे स्वीकार किया। अनन्तर में सुलक्षणा के निवास के लिए पृथक महल खाली कर दिया गया।

आठ मास के पश्चात् सुलक्षणा के पास सन्देशा पहुँचा कि कल प्रातःकाल वीरमदेव का सिर उसके पास पहुँच जायगा। सुलक्षणा ने शान्ति का श्वास लिया। अब प्रेम की प्यास बुझ गई। जिसने मुझे तुच्छ समझकर ठुकराया था, मैं उसके सिर को ठोकर मारूँगी। वीरमदेव ने मुझे तुच्छ स्त्री समझा, परतु यह विचार न किया कि स्त्री देश भर का नाश कर सकती है। प्रेम भयानक है, परन्तु प्रतिकार उससे भी अधिक भयकर है। सुलक्षणा हँसी। इस हँसी में प्रतिकार का निर्दय भाव छुपा हुआ था।

विचार आया, मरने से पहले एक बार उसे देखना चाहिए। वह उस दुर्दशा में लज्जित होगा। सहायता के लिए प्रार्थना करेगा। मैं गौरव से सिर ऊँचा करूँगी। वह पृथ्वी में धुसता जायगा, मेरी ओर देखेगा परन्तु करुणा दृष्टि से। उस दृष्टि पर खिलखिलाकर हँस देने पर उसे अपनी और मेरी अवस्था का ज्ञान होगा।

इतने में बादशाह सलामत आये। सुलक्षणा के मन की इच्छा पूरी हुई। कुँआ प्यासे के पास आया। बादशाह ने देखा सुलक्षणा सादी पोशाक में है। इस पर सुन्दरता उससे फूट फूटकर निकल रही है। हँसकर बोला— 'सादगी के आलम में यह हाल है, तो जेवर पहनकर बिलकुल ही गजब हो जायगा। कहो तबीयत अच्छी है?

'सुलक्षणा ने लजाकर उत्तर दिया, 'जी हाँ, परमात्मा की कृपा से।'

'तुम्हारी चीज कल सुबह तुम्हारे पास पहुँच जायगी।'

'मैं बहुत कृतज्ञ हूँ, परन्तु एक प्रार्थना है, आशा है आप स्वीकार करेंगे।'

अलाउद्दीन ने सुलक्षणा के चेहरे की ओर देखते हुए कहा 'क्या आज्ञा है!'

'मैं वीरमदेव से एक बार साक्षात् करना चाहती हूँ। प्रातःकाल से पहले एक बार उससे भेंट करने की इच्छा है।

अलाउद्दीन ने सोचा, चिड़िया जाल में फँस चुकी है, जाती कहाँ है! वीरमदेव को चिढ़ाना चाहती है, इसमें हर्ज की बात नहीं। यह विचार कर उसने कहा, 'तुम्हारी बात मंजूर है, लेकिन अब निकाह जल्द हो जाना चाहिए।'

सुलक्षणा ने उत्तर दिया, 'घबराइए नहीं, अब दो-चार दिन की ही बात है।'

बादशाह ने अँगूठी सुलक्षणा को दी कि दरोगा को दिखाकर वीरमदेव से मिल लेना और आप प्रसन्न होते हुए महल को रवाना हो गये।

[७]

सुलक्षणा ने नवीन वस्त्र पहने, माँग मोतियों से भरवाई, शरीर पर आभूषण अलंकृत किये, और वह दर्पण के सामने जा खड़ी हुई। उसने अपना रूप सहस्रा बार देखा था, परन्तु आज वह अप्सरा प्रतीत होती थी। कमरे में बहुत-सी सुन्दर मूर्त्तियाँ थीं, एक एक करके सबके साथ उसने अपनी तुलना की, परन्तु हृदय में एक भी न जमी। अभिमान सौन्दर्य का कटाक्ष है। सुलक्षणा अपने रूप के मद में मतवाली होकर झूमने लगी।

कहते हैं, सुन्दरता जादू है, और उससे पशु भी वश में हो जाते हैं। सुलक्षणा ने सोचा, क्या वीरमदेव हृदय से शून्य है। यदि नहीं, तो क्या वह मुझे देखकर फड़क न उठेगा? अपनी की हुई उपेक्षाओं के लिए पश्चात्ताप न करेगा? प्रेम सब कुछ सह लेता है, परन्तु उपेक्षा नहीं सह सकता। परन्तु थोड़े समय के पश्चात् दूसरा विचार हुआ। यह क्या? अब प्रेम का समय बीत चुका, प्रतिकार का समय आया है। वीरमदेव का दोष साधारण नहीं

है। उसे उसकी भूल सुझानी चाहिए। यह शृंगार किसके लिए है? मैं वीरमदेव के घावों पर निमक छिड़कने चली हूँ, उसे अपनी सुन्दरता दिखाने नहीं चली।

यह सोचकर उसने अपने वस्त्र उतार लिये, और वीरमदेव को जलाने के लिए मुसल्मानी वस्त्र पहनकर पालकी में बैठ गई।

रात्रि का समय था, गगन-मण्डल तारों से जगमगा रहा था। सुलक्षणा बुरक़ा पहने हुए क़ैदख़ाने के दरवाज़े पर गई और बोली, 'दारोग़ा कहाँ है?'

सिपाहियों ने कहारों के साथ शाही कर्मचारी देखकर आदर से उत्तर दिया, 'हम उन्हें अभी बुला लाते हैं।'

सुलक्षणा ने नर्मी से कहा, इसकी आवश्यकता नहीं। मैं वीरमदेव को देखूँगी, क़ैदख़ाने का दरवाजा खोल दो।'

सिपाही काँप गये और बोले, 'यह हमारी शक्ति से बाहर है।'

सुलक्षणा ने कड़ककर कहा, 'आज्ञा पालन करो। तुम रानी सुलक्षणा की आज्ञा सुन रहे हो। यह देखो शाही अँगूठी है।'

रानी सुलक्षणा का नाम राजधानी के बच्चे-बच्चे की जिह्वा पर था। को उसके गौरवर्ण का अनुमोदक था, कोई रसीले नयनों का। कोई गुलाब गालों का, कोई पखड़ियों से होठों का। जब से उसने अलाउद्दीन पर विज पाई थी, तब से उसकी सुन्दरता की कल्पित कहानियाँ घर-घर में प्रसिद्ध हो रही थीं। उसे किसी ने नहीं देखा, परन्तु फिर भी कोई न था, जो इस बात की डींग मारकर मित्रों में प्रसन्न न होता हो कि उसने सुलक्षणा को देखा है।

सिपाहियों ने सुलक्षणा का नाम सुना और शाही अँगूठी देखी, तो उनके प्राण सूख गये। काँपते हुए बोले, 'जो आज्ञा हो, हम हाजिर हैं।' यह कहकर उन्होंने क़ैदख़ाने का दरवाज़ा खोल दिया और वे दीपक लेकर उस कोठरी की ओर रवाना हुए जिसमें अभागा वीरमदेव अपने जीवन की अन्तिम रात्रि के श्वास पूरे कर रहा था। सुलक्षणा के पैर लड़खड़ाने लगे — वह सामने होगा। जिसकी कभी मन में आराधना किया करती थी, उसे वध की आज्ञा सुनाने चली हूँ।

छलक आये हैं। ललिता के मुँह से निकले 'बाबा' सम्बोधन की मृदुता ने उसके प्राणों में सुख की एक सिहर सी लहरा दी। उसने कहा—

'नहीं, बेटी! मुझे सवेरे से कोई काम नहीं मिला। मेरा घर यहाँ नहीं है। बहुत दूर है। पेशावर तुमने सुना होगा, उसके पास अटक है, अटक के पास मेरा घर है। दरिया सिन्ध इसको छूकर बहता है। मैं यहाँ आज ही आया हूँ। काम न मिलता तो न जाने मेरा क्या होता?

दरिया सिन्ध के किनारेवाले हिन्दुस्तान के छोर पर के गाँव से यह बुड्ढा सिक्ख, नर्मदा के, किनारे के हिन्दुस्तान के बीचो-बीच बसे हुए इस होशङ्गाबाद में, इस प्रकार वे पैसे, किस आफत का मारा आ पहुँचा, यह सब जानना मुझे आवश्यक न जान पड़ा। पर ललिता ने कुरेद-कुरेदकर उसकी कहानी पूछी। मैंने नी।

जब वे उपयु[illegible]ढा नहीं था, जवान था,—तब की बात है। दरिया में बाढ आ गई[illegible]या जानो वह गया, खेत डूब गये। वह, उसकी घरवाली, और उसका एक छोटा है, [illegible] —न तीनों ने एक दूर गाँव में जाकर आश्रय लिया। पर खायें कह[illegible]? जो थोड़ा-बहुत नक़द बाढ के मुँह से बचाकर ले आ सके थे, उससे ही बैठकर कब तक खायेंगे! ऐसी ही चिन्ता के समय उसे एक तरकीब सुझाई गई। मदरास चला जाय तो वहाँ बहुत आदमियों की जरूरत है, खूब तनख्वाह मिलती है और सहूलियतें हैं। खूब आराम है। थोड़े ही दिनों में मालामाल होकर लौट सकेगा। मदरास पहुँचा,—वहाँ से फ़िजी। घर से निकलने पर यह अब उसके बस का न रह गया था कि वह फ़िजी न जाय। तब फिजी न जाता तो शायद जेल जाना पड़ जाता, ताज्जुब नहीं जाने से हाथ धो बैठने का ही मौक़ा आ जाता। फिजी में काम किया। पीछे से वहाँ कमाने का मौक़ा हो सकता था, पर बच्चे की, घरवाली की याद ने वहाँ रहने न दिया। जहाज के टिकट भर का पैसा पास होते ही वह च[illegible] दिया। मदरास आया। आरी और बसूलों की सहायता से [illegible] हो चुके थे। एक महीने तक अपना पेट भरा और उनसे ही एक म[illegible]

का किराया जुटाया। बम्बई में जैसे-तैसे पेट तो [illegible], लेकिन मुझे इसमें [illegible]र हजार ज्यादे काम करने पर भी [illegible] पाता हूँ—और घर में [illegible]

आखिर लाचार बे-टिकट चल दिया। होशङ्गाबाद में टिकटवालों ने उतार दिया। वहाँ से वह अपने औजार सँभाले चला आ रहा था। बहुत समझो, उसकी वह पूँजी रेलवालों ने छोड़ दी।

कहानी सुनकर बुड्ढे पर दया करने को मेरा जी चाहा। पूछा—

'ललिता, इसे कितने में तय किया था?'

'ठहराया तो कुछ नहीं।'

'नहीं ठहराया?'

'नहीं।'

'अच्छा जो ठहराया उससे एक आना ज्यादा देना।'

मुझसे 'अच्छा' कहकर सिक्ख से उसने पूछा—

'बाबा, तुम यहाँ रहोगे?'

'ना, बेटी।'

'क्यों, बाबा?'

'घर तो अपना नहीं है। घर क्या छोड़ा जाता है? फिर बच्चे को कब से नहीं देखा। बीस साल हो गये।'

'बाबा, क्या पता वह मिलेगा ही। बीस बरस थोड़े नहीं होते!'

'हाँ क्या पता! पर मैंने अपने हिस्से की काफ़ी आफ़त भुगत ली है। परमात्मा अब इस बुड्ढे के बुढ़ापे में उसका बचा खुचा नहीं छीन लेंगे। मुझे पूरा भरोसा है, वह मुझे जरूर मिलेगा, हाँ उसकी माँ तो शायद ही मिले।'

ललिता के ढङ्ग से जान पड़ा, वह इतनी थोड़ी सी बातें करके सन्तुष्ट नहीं है। वह उस बुड्ढे से और बातें करना चाहती है। पर मुझे तो समय वृथा नहीं गँवाना था। मैं फिर एक आना ज्यादे देने की हिदायत देकर चला आया।

[४]

वह बुड्ढा तो धीरे-धीरे मेरे घर में हिलने लगा। ज्यादातर घर पर रहता है। किसी न किसी चीज को ठीक करता रहता। उसने घर के सारे ... को पालिश से चमकाकर नया कर दिया। नई-नई चीजें भी बढ़ा दीं।

बना दीं। वह ललिता का विशेष कृपापात्र था, और ललिता उसकी विशेष कृतज्ञतापात्र थी। उसने एक बड़ा सुन्दर सिंगारदान ललिता को बनाकर दिया। एक कैश-बक्स। मेरे लिए हैट-स्टैंड, खूँटियाँ वगैरह वगैरह चीजें बनाकर दीं। मैंने भी समझा कि वह अपने लिए इस तरह ख़ामख़्वाह मजदूरी बढ़ा लेता है, चलो इसमें गरीब का भला ही है।

लेकिन हर एक चीज़ की हद होनी चाहिए। गरीब की भलाई की जहाँ तक बात है, वहाँ तक तो ठीक। पर उनसे दोस्ती-सी पैदा कर लेना, उन्हें अपना ही बना बैठना,—यह भी कोई बुद्धिमानी है! पर अल्हड ललिता कुछ नहीं समझती। उसका तो ज्यादा समय अब इस बुड्ढे से ही छोटी-छोटी चीजें बनवाने में, उससे बातें करने में बीतता है

मैं यह भी देखता हूँ कि बुड्ढा दीनता और उम्र के अतिरिक्त और किसी बात में बुड्ढा नहीं है। बदन से खूब हट्टा कट्टा है, खूब लम्बा चौडा है। दाढी मूँछों से भरा हुआ उसका चेहरा एक प्रकार की शक्ति से भी है भरा। यह मुझे अच्छा नहीं लगता। इसलिए मैंने उसे एक दिन बुलाकर कहा—बुड्ढे, अब गाँव कब जाओगे?'

'गाँव?—कैसे जाऊँगा जी, गाँव?'

'क्यों?'

'जी।'

'देखो, थोड़ी-बहुत मदद की जरूरत हो, मैं कर दूँगा। पर तुम्हें अब अपने बच्चे के पास जाना चाहिए। और यहाँ जब काम होगा, बुला लूँगा, तुम्हारा फिजूल आना-जाना ठीक नहीं।'

बुड्ढा इस पर कुछ न बोला—मानो उसे स्वीकार है।

उसके बाद से वह घर पर बहुत कम दीखता। एक बार आया तब मैंने जवाब तलब किया—

'बुड्ढे! क्यों आये?—क्या काम है?'

'जी, बिटिया ने बुलवाया था।'

'बिटिया,—कौन बिटिया?'

'वही, आपकी।'

'देखो, बुड्ढे, गुस्ताख़ी अच्छी नहीं होती।' वह ख़ाली हाथ
इस पर बुड्ढा बहुत-कुछ गिड़गिड़ाया, 'गुस्ताख़ी नहीं, गुरुजी उससे
और उसने बहुत-सी शपथें खाकर विश्वास दिलाया कि वह कभी अपन
'मारे बराबर नहीं समझ सकता, 'आप तो राजा हो, हम तो किंकर नाचीज़
' और 'वह तो मालकिन हैं, साक्षात् राजरानी हैं' आदि और अन्त में
ती पर माथा टेककर वह चला गया।

बुड्ढे की ओर से मुझे मुक्ति मिली। पर उसी रात को मेरे पास आया
क। उसने बताया कि वह हिन्दी शिक्षावली दो भाग ख़तम कर चुका है,
और भी जो ललिता की आज्ञा हो करने को तैयार है, वह अब जल्दी
इँगलैण्ड वापस चला जायगा, पर ललिता के बिना कैसे रहेगा, उसने
अपने पैसे के, अपनी योग्यता के, अपनी स्थिति के, अपने बड़प्पन के वर्णन
संक्षेप में पेश किये, अपना प्रेम बतलाया और उसके स्थायित्व की शपथ
खाई, इस तरह अपना सम्पूर्ण मामला मेरे सामने रखने के बाद मेरी
सम्मति चाही। पर मेरी सम्मति का प्रश्न नहीं था। मेरी तो उसमें हर तरह
की सम्मति थी। मैंने उसे आश्वासन दिया—'कल ललिता से ज़िक्र करूँगा।'

वह बोला—'देखिए, मैं नहीं जानता क्या बात है। पर मुझे ललिता
अवश्य मिलनी चाहिए। मेरी उससे बातें हुई हैं, खूब हुई हैं। वह मेरे गोरे-
पन से घबराती है। पर मैं उससे भी कह चुका हूँ, आपसे कहता हूँ कि इसमें
मेरा दोष तो है नहीं। फिर हिन्दी मैं सीखता जा रहा हूँ। वह कहती है,
मुझमें और उसमें बहुत अन्तर है। मैं मानता हूँ—है। न होता तो बात ही
क्या थी। पर हम एक हुए तो मैं कहता हूँ, सब अन्तर हवा हो जायगा।
वह जो चाहेगी सो ही करूँगा।'

मैंने उसे विश्वास दिलाया, 'मैं अपने भरसक करूँगा।'

उसने कहा, 'ललिता के भारतीय वातावरण में पले होने के कारण यह
बिलकुल स्वाभाविक है कि वह इस सम्बन्ध में अपने अभिभावक से आज्ञा
प्राप्त करे।' इसी लिए उसने मुझसे कहना ठीक समझा। मैंने फिर उसे वही
विश्वास दिलाया और वह मेरी चेष्टा में सफलता की कामना मनाता हुआ
चला गया।

बना दीं। वह लि

[५]

कृतज्ञतापात्र
ल रोज ललिता से जिक्र छेड़ा। मैंने कहा—

दि 'ललिता, रात में डिक आया था।'

ललिता चुप थी।

'तुम जानती हो, वह क्या चाहता है? तुम वह भी जानती होगी कि मैं क्या कहता हूँ?'

वह चुप थी। वह चुप ही रही।

मैंने सब ऊँच-नीच उसे बताया। अपनी स्पष्ट इच्छा,—यदि आज्ञा हो सके तो आज्ञा,—जतला दी, ऐसे सम्बन्धों का औचित्य प्रतिपादन किया, सक्षेप में सब कुछ कहा। मेरी बात ख़तम न हो गई तब तक वह गम्भीर मुँह लटकाये, एक ध्यान एक मुद्रा से, निश्चल खड़ी रही। मेरी बात खतम हुई कि उसने पूछा—

'बाबा को आने से आपने मना किया था?'

कहाँ की बात कहाँ? मैं समझ नहीं पाया।

'कौन बाबा?'

'वही—बुड्ढा, सिक्ख, मिस्त्री!'

'हाँ, मैंने समझाया था, उसे फिजूल आने की जरूरत नहीं।'

'तो उनसे (डिक से) कहिए, मैं अपने को इतनी सौभाग्यवती नहीं बना सकती। मुझ नाचीज की फिक्र छोड़ें, क्योंकि भाग्य में मुझे नाचीज ही बने रहकर रहना लिखा है।'

मुझे बड़ा धक्का लगा। मुँह से निकला—

'ललिता!'

'उनसे कह दीजिएगा—बस!' यह कहकर वह चली गई। मैं कुछ न समझ सका।

अगले रोज कचहरी से लौटा तो घर पर ललिता न थी। कॉलेज में दिखवाया, उसके महिला-मित्रों के यहाँ पुछवाया फिर उस बुड्ढे मिस्त्री के [illegible] भी ढुँढवाया। वह बुड्ढा भी ग़ायब था।

'मालिक,—राजाजी—'

उसकी गड़बड़ गिड़गिड़ाहट में से मैंने परिणाम निकाला, वह ख़ाली हाथ है, किराये को पैसा चाहता है, परन्तु वह घर चला जायगा, नहीं तो उससे नौकरी या मज़दूरी करवा ली जाय।

मैंने उसे घर पर ही रहकर काम करने का हुक्म दिया।

डिक को मैंने सूचना दी—'वही बुड्ढा भिक्ख आ गया।' डिक ने कहा—'उसे छुड़ा लो। उसे साथ लेकर उसके गाँव चलेंगे।'

'छुड़ा लिया है। तो गाँव चलोगे।'

'हाँ, ज़रूर, अभी।'

हम दोनों बुड्ढे को साथ लेकर चल दिये। हमने देखा, बुड्ढा बिलकुल मनहूस नहीं है। बड़प्पन के आगे तो वह निरीह-दीन हो जाता है, पर अगर उससे सहानुभूति-पूर्वक बोला जाय तो वह बड़ा खुशमिजाज बन जाता है। उसने सफर में तरह-तरह से हमारी सेवा की, तरह-तरह के क़िस्से सुनाये, लेकिन उस ख़ास विषय पर किसी ने ज़िक्र नहीं उठाया। मानो वह विषय सबके हृदय के इतना समीप है कि ज़रा उँगली लगी तो वह कसक उठेगा।

[८]

सिन्ध घहराता हुआ बह रहा है, और हम स्लेट के पत्थरों के बीच एक पगडण्डी से चुपचाप जा रहे हैं, पैदल।

एक छोटे-से गाँव के किनारे हम आ गये। २६-३० घर होंगे। नीची छतें हैं, उनसे भी नीचे द्वार। शाम हो गई है। हरित भीमकाय उत्तुङ्ग पर्वत मालाओं की गोद में, इस प्रशान्त सिन्ध सन्ध्या में, यह खेड़ा, इस अजेय प्रवाह में बहते जाते हुए सिन्ध के किनारे, विश्व के इस एकान्त-शान्त-अज्ञात औरत गुप चुप छिपे हुए कोने में, मानो दुनिया की व्यर्थ व्यस्तता और कोलाहल के प्रतिवाद-स्वरूप विश्राम कर रहा है। प्रकृति स्थिर, निमन, निश्चेष्ट, मानो किसी सजीव राग में तन्मय हो रही है। यह खेड़ा भी मानो इसी राग (harmony) के मौन समारोह में योग दे रहा है।

इन मुट्ठी-भर मकानों से अलग टेकड़ी-सी ऊँची जगह पर एक नया-सा भोपड़ा आया और बुड्ढे ने हमें ख़बरदार कर दिया। बुड्ढे ने उँगली आँटा

पर रख सकेत किया, हमको यहीं, चुप ठहर जाना चाहिए। हम तीनों खड़े हो गये, मानो साँस भी रोक लेना चाहते हैं, ऐसे निस्तब्ध भाव से। नर आवाज़ आई।

'अभी नहीं। सबक़ ख़तम कर दो। तब चलेंगे।'

ओह! ललिता की आवाज थी। डिक का तो कलेजा ही उछलकर मुँह तक आ गया। पर हम सब ज्यों के त्यों खड़े रहे।

एक भारी, अनपढ, दबी, मानो आज्ञा के बोझ से दबी, आवाज में सुनाई पड़ा—

'दिस इज ए चे—चेग्रर—'

'हाँ, चेग्रर, ठीक, चेग्रर। गो ऑन।'

दो-तीन ऐसे लड़खड़ाते वाक्य और पढ़े गये। और इसी प्रकार उन पर दाद दी गई। फिर उसी बारीक, उकसाती हुई और चाहभरी आवाज में सुन पड़ा—

'अच्छा, जाने दो! छोड़ो। चलो, दरिया चलें। लेट-स गो।'

हम ओट में छिप रहे। दोनों निकले। ललिता और वह। वह कौन है! शकल ठीक नहीं देख पडी, पर देखा,— खूब डील-डौल का जवान है। पट्टे भरे हैं, चाल मे धमक है, पर उसमें सादगी है।

ललिता उसके बायें हाथ की उँगलियाँ थामे हुए थी। उन्हीं उँगलियों से खेलती चली जा रही थी।

मैंने बुड्ढे से पूछा—'वह कौन है?'

'मेरा लड़का—पुरुषसिंह।' शायद पुरुषसिंह वह ठीक न बोल सका हो।

तब उस बुड्ढे ने कहा—'आओ, चलें, देखें।'

हम चुपचाप उसके साथ चले।

सिन्ध सामने ही तो है। एक बड़ी-सी चट्टान के पास ऐसे खड़े हो गये कि उन दोनों की निगाहों से बचे रहें।

'यू, पोरस, वह क्या कह रहा है?—लाओगे?—ला सकते हो! कैन यू?'

'वह क्या बात?—लो।'

धोती पर एक लम्बा-सा कुर्ता तो पहने ही था। उतारा, और उस सिन्ध के [illegible] प्रवाह में कूद पड़ा। लकड़ी का टुकड़ा था, किनारे से १५ गज दूर तो होगा, हमारे देखते-देखते ले आया।

हँसता-दौड़ता आया ललिता के पास। बोला—

'ले आया!—बस!—पर दूँगा नहीं।' इतना कहकर फिर उसने वह लकड़ी भरपूर जोर से धार में फेंक दी।

ललिता ने कहा—'यू नॉटी।'

'मैं अपने को सँभाल न सका। चट्टान के पीछे से ही बोल पड़ा—'यू नाटिएस्ट.. .. ..।'

और बोलने के साथ ही हम तीनों उसके सामने आविर्भूत हो पड़े।

Hallo, Uncle! and. oh, Hallo you Dick! How d'ye do dear Dick,? ..and, oh my dear father—what luck!'

कहकर उसने बुड्ढे का हाथ चूमकर पहले उसका अभिवादन किया।

'See you my porus, Dick? King porus of history mind you! Is he not as fair as you?' डिक को वाग्विमूढ़ छोड़ पोरस की ओर मुड़कर 'इण्ट्रोडिक्शन' देते हुए कहा—'My uncle मेरे चाचा and that my dear dear friend Dick और वह डिक मेरा खूब प्यारा दोस्त!'

घुटने से ऊपर लाई हुई गीली धोती और नङ्गा बदन लिये पोरस ने डिक अँगरेज और मुझ जज के सामने इस परिचय पर हँस दिया। मानो उसे हमारा परिचय खुशी से स्वीकार है।

रेख अभी नहीं फूटी है, बदन और चेहरा भरा पूरा है, आँखें भोलेपन और खुशी से हँस रही हैं। मुझे यह मानव-मूर्ति स्वास्थ्य और सुख और प्रसन्नता से खिली हुई, मानो गढ़ी हुई यह प्रकृति-मूर्ति अरुचिकर न जान पड़ी।

'पोरस, यू, चाचा को सिर नवाओ।'

उसने दोनों हाथ जोड़कर नमस्ते सिर झुका दिया।

तब डिक का हाथ बढ़ा। पोरस का हाथ 'शेक' करते हुए कहा तीन, खड़े तुम राजा है। हम हारता है, और हम खुश है!' पोरस का हाथ वैसे ही थामे हुए ललिता की ओर मुड़कर कहा, 'Lalita dear, I congratulate you on your treasure, on your victory, on your king! In truth, I do Here's my hand, और ललिता का हाथ झकझोर दिया।

'Long live porus, I say—and I be saved'

प्रश्नावली

१. ललिता के चरित्र की क्या विशेषता है? उसका इस गल्प पर क्या प्रभाव पड़ता है? उसके चरित्र की आलोचना कीजिए।

२ शायद उन शब्दों का ललिता के व्यक्तित्व से कोई सामंजस्य है। इस कथन की व्याख्या कीजिए और सिद्ध कीजिए की सम्पूर्ण गल्प इसी कथन पर अवलम्बित है।

३ प्रसंग के साथ इन अवतरणों का अर्थ लिखिए —

अ—पर इस बोलने को बीच में लाकर ही वह अपने और डिक के बीच अनुल्लङ्घनीय अन्तर डालने का उपक्रम करती रहती है।

ब—एक दूसरे को नजदीक लाने में कलह की इन छोटी-छोटी बातों से अमोघ चीज कोई नहीं।

ग—ललिता के मुँह से निकले 'बाबा' सम्बोधन की मृदुता ने उसके प्राणों में सुख की एक लहर सी लहरा दी।

घ—उसने कहा ललिता के भारतीय वातावरण में पले होने के कारण यह बिलकुल स्वाभाविक है कि वह इस सम्बन्ध में अपने अभिभावक से आज्ञा प्राप्त करे।

४ ललिता के चचा की शिक्षा नीति के विषय में आपकी क्या राय है? यह ललिता के स्वभाव के अनुकूल थी या नहीं?

५ 'तो उन (डिक) से कहिए मैं अपने को इतनी सौभाग्यवती नहीं बना सकती। मुझ नाचाज़ की फिक्र छोड़ें, क्योंकि भाग्य में मुझे नाचीज ही बने रहकर रहना लिखा है।'

क—इस कथन का ललिता के चरित्र से सामंजस्य सिद्ध कीजिए।

ख—डिक से विवाह करने में ललिता को क्या आपत्ति थी?

६ डिक का चरित्र अंकित कीजिए।

७ इन शब्दों को अपने वाक्यों में प्रयोग कीजिए।

निश्चेष्ट, भीमकाय, औचित्य, अजेय, आविर्भूत।

मधुआ

श्री जयशंकर प्रसाद

(सन १८८९—१९३७)

आपका जन्मस्थान काशी है। आप बड़े सहृदय, मिलनसार और निरभिमान थे। अंग्रेजी, उर्दू और बँगला के आप अच्छे ज्ञाता थे। रहस्यवादी कवियों में आपका विशेष स्थान था। आधुनिक नाटककारों में आप सर्वश्रेष्ठ समझे जाते हैं। कहानी लेखकों में आपका उच्च स्थान है। आपकी कहानियाँ भाव-प्रधान होती हैं। आप उपन्यास लिखने में भी सिद्धहस्त थे। निम्नलिखित आपकी प्रमुख रचनाएँ हैं—

नाटक—विशाख, जनमेजय का नागयज्ञ, अजातशत्रु, राज्यश्री, स्कन्दगुप्त और चन्द्रगुप्त

उपन्यास—कंकाल और तितली।

गद्य संग्रह—आकाशदीप, प्रतिध्वनि, छाया और आँधी।

[१]

'आज सात दिन हो गये, पीने की कौन कहे, छुआ तक नहीं। आज सातवाँ दिन है सरकार!'

'तुम झूठे हो। अभी तो तुम्हारे कपड़े से महँक आ रही है।'

'वह वह तो कई दिन हुए। सात दिन से ऊपर—कई दिन हुए—अँधेरे में बोतल उँड़ेलने लगा। कपड़े पर गिर जाने से नशा भी न आया। और आपको कहने को.. क्या कहूँ सच मानिए, सात दिन—ठीक सात दिन से एक बूँद भी नहीं।'

ठाकुर सरदारसिंह हँसने लगे। लखनऊ में लड़का पढ़ता था। ठाकुर साहब भी कभी कभी वहीं आ जाते। उनको कहानी सुनने का चस्का था। खोजने पर यही शराबी मिला। वह रात को, दोपहर में, कभी कभी सवेरे भी आ जाता। अपनी लच्छेदार कहानी सुनाकर ठाकुर का मनोविनोद करता।

ठाकुर ने हँसते हुए कहा—'तो आज पियोगे न!'

'झूठ कैसे कहूँ। आज तो जितना मिलेगा, सबकी पीऊँगा। सात दिन चने चबेने पर बिताये हैं, किस लिए।

'अद्‌भुत ! रात दिन पेट काटकर आज अच्छा भोजन न करके तुम्हें पीने की सूझी है ! यह भी '

'सरकार ! मौज-बहार की एक घड़ी, एक लम्बे दुःख-पूर्ण जीवन से अच्छी है। उसकी खुमारी में रूखे दिन काट लिए जा सकते हैं।'

'अच्छा आज दिन भर तुमने क्या-क्या किया ?'

'मैंने ? अच्छा सुनिए—सबेरे कुहरा पड़ता था, मेरे धुँआँसे कम्बल सा वह भी सूर्य्य के चारों ओर लिपटा था। हम दोनों मुँह छिपाये पड़े थे।'

ठाकुर साहब ने हँसकर कहा—'अच्छा तो इस मुँह छिपाने का कोई कारण ?'

'सात दिन से एक बूँद भी गले में न उतरी थी। भला मैं कैसे मुँह दिखा सकता था। और जब बारह बजे धूप निकली, फिर भी लाचारी थी। उठा, हाथ मुँह धोने में जो दुःख हुआ, सरकार वह क्या कहने की बात है ! पास में पैसे बचे थे। चना चबाने से दाँत भाग रहे थे। कटकटी लग रही थी। पराठेवाले के यहाँ पहुँचा, धीरे धीरे खाता रहा और अपने को सेंकता भी रहा। फिर गोमती किनारे चला गया। घूमते घूमते अँधेरा हो गया, बूँदे पड़ने लगीं। तब कहीं भगा और आपके पास आ गया।'

'अच्छा जो उस दिन तुमने गड़रियेवाली कहानी सुनाई थी, जिसमें आसफुद्दौला ने उसकी लडकी का आँचल भुने हुए भुट्टे के दानों के बदले मोतियों से भर दिया था, वह क्या सच है ?'

'सच ! अरे वह गरीब लडकी भूख से उसे चबाकर थू-थू करने लगी ! रोने लगी। ऐसी निर्दय दिल्लगी बड़े लोग कर ही बैठते हैं। सुना है श्रीरामचन्द्र ने भी हनुमानजी से ऐसा ही . '

ठाकुर साहब ठठाकर हँसने लगे। पेट पकड़कर हँसते-हँसते लोट गये। साँस बटोरते हुए सम्हलकर बोले—'और बड़प्पन कहते किसे हैं ? कंगाल तो कंगाल ! गधी लड़की ! भला उसने कभी मोती देखे थे, चबाने लगी होगी। मैं सच कहता हूँ, आज तक तुमने जितनी कहानियाँ सुनाईं, सब में बड़ी टीस है। शाहजादों के दुखड़े, रङ्ग-महल की अभागिनी बेगमों के निष्फल प्रेम, कथा और पीड़ा से भरी हुई कहानियाँ ही तुम्हें आती हैं, पर ऐसी

हँसानेवाली कहानी और सुनाओ, तो मैं तुम्हें अपने सामने ही बढ़िया शराब पिला सकता हूँ।'

'सरकार! बूढ़ों से सुने हुए वे नवाबी के सोने-से दिन, अमीरों की रंग-रेलियाँ, दुखड़े की दर्द-भरी आहें, रंग-महलों में घुल-घुलकर मरनेवाली बेगमें, अपने-आप सिर में चक्कर काटती रहती हैं। मैं उनकी पीड़ा से रोने लगता हूँ। अमीर कंगाल हो जाते हैं। बड़ों-बड़ों के घमण्ड चूर होकर धूल में मिल जाते हैं। तब भी दुनिया बड़ी पागल है। मैं उसके पागलपन को, भूलने के लिए शराब पीने लगता हूँ—सरकार! नहीं तो यह बुरी बला कौन अपने गले लगाता!'

ठाकुर साहब ऊँघने लगे थे। अँगीठी में कोयला दहक रहा था। शराबी सरदी से ठिठुरा जा रहा था। वह हाथ सेंकने लगा। सहसा नींद से चौंककर ठाकुर साहब ने कहा—'अच्छा जाओ, मुझे नींद लग रही है। वह देखो, एक रुपया पड़ा है, उठा लो। लल्लू को भेजते जाओ।'

शराबी रुपया उठाकर धीरे से खिसका। लल्लू ठाकुर साहब का जमादार था। उसे खोजते हुए जब वह फाटक पर की बगलवाली कोठरी के पास पहुँचा, तो उसे सुकुमार कण्ठ से सिसकने का शब्द सुनाई पड़ा। वह खड़ा होकर सुनने लगा।

'तो सुअर रोता क्यों है! कुँवर साहब ने दो ही लात न लगाई हैं! कुछ गोली तो नहीं मार दी?'—कर्कश स्वर से लल्लू बोल रहा था, किन्तु उत्तर में सिसकियों के साथ एकाध हिचकी ही सुनाई पड़ जाती थी। अब और भी कठोरता से लल्लू ने कहा—'मधुआ! जा सो रह! नखरा न कर, नहीं तो उठूँगा तो खाल उधेड़ दूँगा! समझा न?

शराबी चुपचाप सुन रहा था। बालक की सिसकी और बढ़ने लगी। फिर उसे सुनाई पड़ा—'ले अब भागता है कि नहीं? क्यों मार खाने पर तुला है?'

भयभीत बालक बाहर चला आ रहा था। शराबी ने उसके छोटे-से सुन्दर गोरे मुँह को देखा। आँसू की बूँदें ढुलक रही थीं। बड़े दुलार से उसका मुँह पोंछते हुए उसे लेकर वह फाटक के बाहर चला आया। दस बज

रहे थे। कड़ाके की सरदी थी। दोनों चुपचाप चलने लगे। शराबी की मौन सहानुभूति को उस छोटे से सरल हृदय ने स्वीकार कर लिया। वह चुप हो गया। अभी वह एक तंग गली पर रुका ही था कि बालक के फिर से सिसकने की उसे आहट लगी। वह झिड़ककर बोल उठा—

'अब क्या रोता है रे छोकरे ?'

'मैंने दिन-भर से कुछ खाया नहीं।'

'कुछ खाया नहीं ! इतने बड़े अमीर के यहाँ रहता है और दिन-भर तुझे खाने को नहीं मिला ?'

'यही तो मैं कहने गया था जमादार के पास, मार तो रोज ही खाता हूँ। आज तो खाना ही नहीं मिला। कुँवर साहब का ओवर-कोट लिये खेल में दिन भर साथ रहा। सात बजे लौटा, तो और भी नौ बजे तक कुछ काम करना पड़ा। आटा रख नहीं सका था। रोटी बनती तो कैसे ? जमादार से कहने गया था।' भूख की बात कहते-कहते बालक के ऊपर उसकी दीनता और भूख ने एक साथ ही जैसे आक्रमण कर दिया। वह फिर हिचकियाँ लेने लगा।

शराबी उसका हाथ पकड़कर घसीटता हुआ गली में ले चला। एक गन्दी कोठरी का दरवाजा ढकेलकर, बालक को लिये हुए वह भीतर पहुँचा। टटोलते हुए सलाई से मिट्टी की ढेबरी जलाकर वह फटे कम्बल के नीचे से कुछ खोजने लगा। एक पराठे का टुकड़ा मिला। शराबी उसे बालक के हाथ में देकर बोला—'तब तक तू इसे चबा; मैं तेरा गढा भरने के लिए कुछ और ले आऊँ—'

'सुनता है रे छोकरे! रोना मत, रोयेगा तो खूब पीटूँगा। मुझसे रोने से बड़ा बैर है। पाजी कहीं का, मुझे भी रुलाने का ..'

शराबी गली के बाहर भागा। उसके हाथ में एक रुपया था। बारह आने का एक देशी अद्धा और दो आने की चाप . दो आने की पकौड़ी .. नहीं-नहीं आलू, मटर . अच्छा, न सही। चारों आने का मांस ही ले लूँगा, पर यह छोकरा! इसका गढा जो भरना होगा, यह कितना खायगा और क्या गा। ओ! आज तक तो कभी मैंने दूसरों के खाने का सोच किया ही ।क्या ले चलूँ? पहले एक अद्धा ही ले चलूँ।

इतना सोचते-सोचते उसकी आँखों पर बिजली के प्रकाश की झलक पड़ी। उसने अपने को मिठाई की दूकान पर खड़ा पाया। वह शराब का अद्धा लेना भूलकर मिठाई पूरी खरीदने लगा। नमकीन लेना भी न भूला। पूरा एक रुपये का सामान लेकर वह दूकान से हटा। जल्द पहुँचने के लिए एक तरह से दौड़ने लगा। अपनी कोठरी में पहुँचकर उसने दोनों की पाँत बालक के सामने सजा दी। उनकी सुगन्ध से बालक के गले में एक तरावट पहुँची। वह मुस्कराने लगा।

शराबी ने मिट्टी की गगरी से पानी उँडेलते हुए कहा—नटखट कहीं का, हँसता है। सोंधी बास नाक में पहुँची न! ले खूब ठूँसकर खा ले और फिर रोया कि पिटा!

दोनों ने, बहुत दिन पर मिलनेवाले दो मित्रों की तरह साथ बैठकर भर-पेट खाया। सीली जगह में सोते हुए बालक ने शराबी का पुराना बड़ा कोट ओट लिया था। जब उसे नींद आ गई, तो शराबी भी कम्बल तानकर बड़बड़ाने लगा—'सोचा था, आज सात दिन पर भर पेट पीकर सोऊँगा, लेकिन यह छोटा सा रोना, पाजी, न जाने कहाँ से आ धमका!'

× × ×

एक चिन्ता-पूर्ण आलोक में आज पहले-पहल शराबी ने आँख खोलकर कोठरी में बिखरी हुई दारिद्र्य की विभूति को देखा, और देखा उस घुटनों से ठुड्डी लगाये हुए निरीह बालक को। उसने तिलमिलाकर मन-ही-मन प्रश्न किया—किसने ऐसे सुकुमार फूलों को कष्ट देने के लिए निर्दयता की सृष्टि की? आह री नियति! तब इसको लेकर मुझे घरबारी बनना पड़ेगा क्या? दुर्भाग्य! जिसे मैंने कभी सोचा भी न था। मेरी इतनी माया-ममता जिस पर, आज तक केवल बोतल का ही पूरा अधिकार था—इसका पक्ष क्यों लेने लगी? इस छोटे से पाजी ने मेरे जीवन के लिए कौन-सा इन्द्रजाल रचने का बीड़ा उठाया है! तब क्या करूँ? कोई काम करूँ? कैसे दोनों का पेट चलेगा! नहीं, भगा दूँ इसे—आँख तो खोले।

बालक अँगड़ाई ले रहा था। वह उठ बैठा। शराबी ने कहा—ले, उठ

कुछ खा ले। अभी रात का बचा हुआ है, और अपनी राह देख! तेरा नाम क्या है रे!

बालक ने सहज हँसी हँसकर कहा—मधुआ। भला हाथ मुँह भी न धोऊँ, खाने लगूँ! और जाऊँगा कहाँ!

'आह! कहाँ बताऊँ इसे कि चला जाय! कह दूँ कि भाड़ में जा, किन्तु वह आज तक दु:ख की भट्ठी में जलता ही तो रहा है। तो' वह चुपचाप घर से झल्लाकर सोचता हुआ निकला—'ले पाजी, अब यहाँ लौटूँगा ही नहीं। तू ही इस कोठरी में रह।'

शराबी घर से निकला। गोमती-किनारे पहुँचने पर उसे स्मरण हुआ कि वह कितनी ही बातें सोचता आ रहा था, पर कुछ भी सोच न सका। हाथ-मुँह धोने में लगा। उजली हुई, धूप निकल आई थी। वह चुपचाप गोमती की धारा को देख रहा था। धूप की गरमी से सुखी होकर वह चिन्ता भुलाने का प्रयत्न कर रहा था कि किसी ने पुकारा—

'भले आदमी रहे कहाँ? सालों पर दिखाई पडे। तुमको खोजते-खोजते मैं थक गया।'

शराबी ने चौंककर देखा। वह कोई जान-पहिचान का तो मालूम होता था, पर कौन है, यह ठीक-ठीक न जान सका।

उसने फिर कहा—तुम्हीं से कह रहे हैं। सुनते हो, उठा ले जाओ अपनी सान धरने की कल, नहीं तो सड़क पर फेंक दूँगा। एक ही तो कोठरी जिसका मैं दो रुपये किराया देता हूँ, उसमे क्या मुझे अपना कुछ रखने के लिए नहीं है!

'ओहो! रामजी तुम हो, भाई मैं भूल गया था। तो चलो आज ही उसे उठा लाता हूँ।' कहते हुए शराबी ने सोचा—अच्छा रही, उसी को बेचकर कुछ दिनों तक काम चलेगा।

गोमती नहाकर, रामजी उसका साथी, पास ही अपने घर पर पहुँचा। शराबी को कल देते हुए उसने कहा—ले जाओ, किसी तरह मेरा इससे पिण्ड छूटे।

बहुत दिनों पर आज उसको कल ढोना पड़ा। किसी तरह अपनी कोठरी

में पहुँचकर उसने देखा कि बालक चुपचाप बैठा है। बड़बड़ाते हुए उसने पूछा—क्यों रे, तूने कुछ खा लिया कि नहीं?

'भर-पेट खा चुका हूँ, और वह देखो तुम्हारे लिए भी रख दिया है।' कहकर उसने अपनी स्वाभाविक मधुर हँसी से उस रूखी कोठरी को तर कर दिया।

शराबी एक क्षण-भर चुप रहा। फिर चुपचाप जलपान करने लगा। मन-ही मन सोच रहा था—यह भाग्य का संकेत नहीं तो और क्या है? चलूँ फिर लेकर सान देने का काम चलता करूँ। दोनों का पेट भरेगा। वही पुराना चरखा फिर सिर पड़ा। नहीं तो, दो बातें क़िस्सा-कहानी, इधर-उधर की कहकर अपना काम चला ही लेता था! फिर अब तो बिना कुछ किये घर नहीं चलने का। जल पीकर बोला—'क्यों रे मधुआ, अब तू कहाँ जायगा?

'कहीं नहीं!'

'यह लो, तो फिर क्या यहाँ जमा गड़ी है कि मैं खोद-खोदकर तुझे मिठाई खिलाता रहूँगा!'

'तब कोई काम करना चाहिए।

'करेगा?'

'जो कहो?'

'अच्छा तो आज से मेरे साथ-साथ घूमना पड़ेगा। यह कल तेरे लिए हूँ। चल आज से तुझे सान देना सिखाऊँगा। कहाँ रहूँगा, इसका कुछ नहीं। पेड़ के नीचे रात बिता सकेगा न!'

'कहीं भी रह सकूँगा, पर उस ठाकुर की नौकरी न कर सकूँगा।'—

शराबी ने एक बार स्थिर दृष्टि से उसे देखा। बालक की आँखें दृढ़ निश्चय की सौगन्ध खा रही थीं।

शराबी ने मन ही मन कहा—बैठे बैठाये यह हत्या कहाँ से लगी। अब शराब न पीने की मुझे भी सौगन्ध लेनी पड़ी।

वह साथ ले जानेवाली वस्तुओं को बटोरने लगा। एक गट्ठर का और कल का, दो बोझ हुए।

शराबी ने पूछा – तू किसे उठायेगा ?

'जिसे कहो।'

'अच्छा, तेरा बाप जो मुझको पकड़े तो ?'

'कोई नहीं पकडेगा, चलो भी। मेरे बाप मर गये।'

शराबी आश्चर्य से उसका मुँह देखता हुआ कल उठाकर खड़ा हो गया। बालक ने गठरी लादी। दोनों कोठरी छोड़कर चल पड़े।

प्रश्नावली

१. शराबी का शराब पीना कैसे छूटा ?

२. इस कहानी का सारांश लिखिए।

३ बालक के रोने का शराबी के हृदय पर क्या प्रभाव पड़ा ?

४. शराबी ने क्यों शराब पीना आरम्भ किया था ?

[१] एक आलोचक ने लिखा है 'जीवन का सत्य बहुधा वहाँ पाया जाता है जहाँ भद्र पुरुष जाते हुए भी नाक बन्द कर लेगा।'

शराबी के चरित्र से इस कथन को आप सिद्ध कर सकते हैं ?

[२] एक चिन्तापूर्ण आलोक में आज पहले-पहल शराबी ने आँख खोलकर कोठरी में बिखरी हुई दारिद्र्य की विभूति को देखा और देखा उस घुटने से ठुड्ढी लगाये निरीह बालक को, उसने तिलमिलाकर मन-ही-मन प्रश्न किया—किसने ऐसे सुकुमार फूल को कष्ट देने के लिए निर्दयता की सृष्टि की ! आह री नियति ! इस छोटे से पागल ने मेरे जीवन के लिए कौन-सा इन्द्रजाल रचने का बीड़ा उठाया है।

अ जो वाक्यांश बड़े टाइप में लिखे गये हैं, उनका आशय लिखो।

ब. शराबी तिलमिलाया क्यों ? इससे उसके चरित्र पर क्या प्रकाश पड़ता है ?

स 'पाजी' यहाँ शराबी के किस मनोभाव का सूचक है, स्नेह या घृणा ?

[३] निम्नलिखित अवतरणों का आशय प्रसङ्ग सहित लिखिए।

क यह भाग्य का संकेत नहीं तो और क्या है ?

ख. बालक की आँखें दृढ़ निश्चय की सौगन्ध खा रही थीं।

ग. मौज बहार की एक घड़ी एक लम्बे दुःखपूर्ण जीवन से अच्छी है।

[४] इस कहानी में प्रसादजी ने भावस्थल के किस भाग का निश्चित ... की है ? आप के विचार में वह इसमें सफल हुए या नहीं ?

पानवाली

श्री चतुरसेन शास्त्री

(सं० १९३९)

आप प्रसिद्ध वैद्य हैं। आजकल आप दिल्ली में रहते हैं। आप गद्य-काव्य-लेखकों में सर्वश्रेष्ठ समझे जाते हैं। आप हृदय के भावों की उथल पुथल का मनोरम चित्रण करने में सिद्धहस्त हैं। आपकी कहानियाँ और उपन्यास उच्चकोटि के होते हैं। आपकी भाषा मुहावरेदार होती है। आपकी मुख्य रचनाएँ ये हैं—

उपन्यास—हृदय की प्यास, हृदय की परख, अमर अभिलाषा।

गल्प संग्रह—अक्षत, रजकण।

गद्य-काव्य—अन्तस्तल, प्रणाम, सन्देश।

नाटक—स्वर्ग, अमर राठौर।

लखनऊ के अमीनाबाद पार्क में इस समय जहाँ घण्टाघर है, वहाँ अब से सत्तर वर्ष पूर्व एक छोटी सी टूटी हुई मस्जिद थी, जो भूतोंवाली मस्जिद कहलाती थी, और अब जहाँ गंगा-पुस्तक माला की आलीशान दूकान है, वहाँ एक छोटा-सा एकमंजिला घर था। चारों तरफ़ न आज की-सी बहार थी, न बिजली की चमक, न बढ़िया सड़कें, न मोटर, न मेमसाहिबाओं का इतना जमघट।

लखनऊ के आखिरी बादशाह प्रसिद्ध वाजिदअली की अमलदारी थी। ऐयाशी और ठाट-बाट के दौर-दौरे थे। मगर इस मुहल्ले में रौनक़ न थी। उस घर में एक टूटी-सी कोठरी में एक बुढ़िया मनहूस सूरत, सन के समान बालों को बिखेरे, बैठी किसी की प्रतीक्षा कर रही थी। घर में एक दीया धीमी आभा से टिमटिमा रहा था। रात के दस बज गये थे। जाड़े के दिन थे, सभी लोग अपने-अपने घरों में रजाइयों में मुँह लपेटे पड़े थे, गली और सड़क पर सन्नाटा था।

धीरे-धीरे बढ़िया वस्त्रों से आच्छादित एक पालकी इस टूटे घर के द्वार पर आकर रुकी और काले वस्त्रों से आच्छादित एक स्त्री-मूर्ति ने बाहर

शराबी ने पूछा - पर थपकी दी। तत्काल द्वार खुला और स्त्री ने
'जिसे कहो।'
'अच्छा, ते कहा—'खैर तो है ?'
'कोई न ठीक है, क्या मौलवी साहब मौके पर मौजूद हैं ?'
शराबी इन्तजार कर रहे हैं, कुछ ज्यादा जाँफ़िशानी तो नहीं करनी पड़ी ?'
'जाँफिशानी ? चे खुश, जान पर खेल कर लाई हूँ, करती भी क्या ! गर्दन थोड़े ही उतरवानी थी।'
'होश में तो है ?'
'अभी वेहोश है। किसी तरह राजी न होती थी। मजबूरन यह किया गया।'
'तब चलें।'
बुढिया उठी। दोनों पालकी मे जा बैठीं। पालकी सकेत पर चलकर मस्जिद की सीढियाँ चढती हुई भीतर चली गई।

[२]

मस्जिद में सन्नाटा और अन्धकार था, मानो वहाँ कोई जीवित पुरुष नहीं है। पालकी के आरोहियों को इसकी परवा न थी। वे पालकी को सीधे मस्जिद के भीतरी कक्ष में ले गये। यहाँ पालकी रखी। बुढिया ने बाहर आकर एक कोठरी में प्रवेश किया। वहाँ एक आदमी सिर से पैर तक चादर ओढ़े सो रहा था। बुढिया ने कहा—'उठिए मौलवी साहब, मुरीदों का तावीज इनायत कीजिए। क्या अभी बुख़ार नहीं उतरा ?'
'अभी तो चढा ही है'—कहकर मौलवी साहब उठ बैठे। बुढिया ने कुछ कान में कहा, मौलवी साहब सफ़ेद दाढी हिलाकर बोले—'समझ गया, कुछ खटका नहीं है। हैदर ख्वाजा मौके पर रोशनी लिए हाजिर मिलेगा। मगर तुम लोग वेहोशी की हालत में उसे किस तरह —'
'आप वेफिक्र रहें। वस सुरग की चाभी इनायत करें।'
मौलवी साहब ने उठकर मस्जिद की बाईं ओर के चबूतरों के पी
''ग में जाकर एक क़ब्र का पत्थर किसी तरकीब से हटा दिया। वहाँ
ल आई। बुढिया उसी तङ्ग तहख़ाने के रास्ते उसी काले

आच्छादित लम्बी स्त्री के सहारे एक बेहोश स्त्री को नीचे उतारने लगी। उनके चले जाने पर मौलवी साहब ने गौर से इधर-उधर देखा और फिर किसी गुप्त तरकीब से तहखाने का द्वार बन्द कर दिया। तहख़ाना फिर क़ब्र बन गया।

[२]

उन हजार फानूसों में कसूमा बत्तियाँ जल रही थीं और कमरे की दीवार गुलाबी साटन के परदों से छिप रही थी। फ़र्श पर ईरानी क़ालीन बिछा था, जिस पर निहायत नफ़ीस और खुशरङ्ग काम बना हुआ था। कमरा खूब लम्बा-चौड़ा था। उसमें तरह-तरह के ताजे फूलों के गुलदस्ते सजे हुए थे और हिना की तेज महक से कमरा महक रहा था। कमरे के एक बाजू में मख़मल का बालिश्त भर ऊँचा एक गद्दा बिछा था। उस पर एक बड़ी सी मसनद लगी थी, जिस पर चार सुनहरे खम्भों पर मोती की झालर का चन्दोवा तना था।

मसनद पर एक बलिष्ठ पुरुष उत्सुकता से किन्तु अलसाया बैठा था। इसके वस्त्र अस्त-व्यस्त थे। इसका मोती के समान उज्ज्वल रङ्ग, कामदेव को मात करनेवाला प्रदीप्त सौन्दर्य, झब्बेदार मूछें, रस-भरी आँखें और मदिरा से प्रफुल्लित होंठ कुछ और ही समा बाँध रहे थे। सामने पानदान में सुनहरी गिलौरियाँ भरी थीं। इत्रदान में शीशियाँ लुटक रही थीं। शराब की प्याली और सुराही क्षण-क्षण पर ख़ाली हो रही थीं। वह सुगन्धित मदिरा मानो उसके उज्ज्वल रंग पर सुनहली निखार ला रही थी। उसके कण्ठ में पन्ने का एक बड़ा-सा कण्ठा पड़ा था और उँगलियों में हीरे की अँगूठियाँ बिजली की तरह दमक रही थीं। यही लाखों में दर्शनीय पुरुष लखनऊ के प्रख्यात नवाब वाजिदअली शाह थे।

कमरे में कोई न था। वह बड़ी आतुरता से किसी की प्रतीक्षा कर रहे थे। यह आतुरता क्षण-क्षण पर बढ़ रही थी। एकाएक एक खटका हुआ। बादशाह ने ताली बजाई और वही लम्बी स्त्री-मूर्ति सिर से पैर तक काले वस्त्रों से शरीर को लपेटे मानो दीवार फाड़कर आ उपस्थित हुई।

'ओह मेरी गफ़रू! तुमने तो इन्तज़ार ही में मार डाला। क्या गिलौरियाँ लाई हो?'

'मैं हुजूर पर कुर्बान !' इतना कहकर उसने वह काला लबादा उतार डाला । उफ, गजब ! उस काले आवेष्टन में मानो सूर्य का तेज छिपा था । कमरा चमक उठा । बहुत बढ़िया चमकीले विलायती साटन का पोशाक पहने एक सौन्दर्य की प्रतिमा इस तरह निकल आई जैसे राख के ढेर में अंगार । इस अग्निष्ट-सौन्दर्य की रूप-रेखा कैसे बयान की जाय ! इस अंग्रेजी राज्य और अंग्रेजी सभ्यता में जहाँ क्षण-भर चमककर बादलों में विलीन हो जाने वाली बिजली, सड़क पर अयाचित ढेरों प्रकाश बखेरती रहती है, तब इस रूप-ज्वाला की उपमा कहाँ ढूँढी जाय ? इस अन्धकारमय रात्रि में यदि उसे खड़ा कर दिया जाय तो वह कसौटी पर स्वर्ण रेखा की तरह दीप्त हो उठे और यदि वह दिन के उज्ज्वल प्रकाश में खड़ी कर दी जाय, तो उसे देखने का साहस कौन करे ? किन आँखों में इतना तेज है ?

उस सुगन्धित और मधुर प्रकाश में मदिरा रंजित नेत्रों से वाजिदअली की वासना उस रूप ज्वाला को देखते ही भड़क उठी । उन्होंने कहा—'रूपा, जरा नजदीक आओ । एक प्याला शीराजी और अपनी लगाई हुई अम्बरी पान की बीड़ियाँ दो तो । तुमने तो तरसा तरसाकर ही मार डाला ।'

रूपा आगे बढ़ी, सुराही से शराब उड़ेली और जमीन में घुटने टेककर आगे बढ़ा दी, इसके बाद उसने चार सोने के वर्क लपेटी बीड़ियाँ निकालकर बादशाह के सामने पेश कीं और दस्तबस्ता अर्ज की—'हुजूर की ख़िदमत में लौंडी वह तोहफा ले आई है ।'

वाजिदअली शाह की बाछें खिल गईं । उन्होंने रूपा को घूरकर कहा—'वाह ! तब तो आज . ' रूपा ने संकेत किया । हैदर ख्वोजा उस फूल सी मुरझाई कुसुम-कली को फूल की तरह हाथों पर उठाकर—पान-गिलौरी की तश्तरी की तरह—बादशाह के रूबरू कालीन पर डाल गया । रूपा ने बाँकी अदा से कहा—'हुजूर को आदाब !' और चल दी ।

[४]

एक चौदह वर्ष की, भयभीत, मूर्छित, असहाय, कुमारी बालिका अकस्मात् आँख खुलने पर सम्मुख शाही ठाट से सजे हुए महल और दैत्य के समान [illegible] को पाप-वासना से प्रमत्त देखकर क्या समझेगी ? कौन अब इस

भयानक क्षण की कल्पना करे। वही क्षण—होश में आते ही उस बालिका के सामने आया। वह एकदम चीत्कार करके फिर से बेहोश हो गई। पर इस बार शीघ्र ही उसकी मूर्च्छा दूर हो गई। एक अतर्क्य साहस, जो ऐसी अवस्था में प्रत्येक जीवित प्राणी में हो जाता है, उस बालिका के शरीर में उदय हो आया। वह सिमटकर बैठ गई और पागल की तरह चारों तरफ़ एक दृष्टि डालकर एकटक उस मत्त पुरुष की ओर देखने लगी।

उस भयानक क्षण में भी उस विशाल पुरुष का सौन्दर्य और प्रभा देखकर उसे कुछ साहस हुआ। वह बोली तो नहीं पर कुछ स्वस्थ होने लगी।

नवाब जोर से हँस दिये। उन्होंने गले का वह बहुमूल्य कण्ठा उतारकर बालिका की ओर फेंक दिया। इसके बाद वह नेत्रों के तीर निरन्तर फेंकते बैठे रहे।

बालिका ने कण्ठा देखा भी नहीं, छुआ भी नहीं, वह वैसी ही सिकुड़ी हुई, वैसी ही निर्निमेष दृष्टि से भयभीत हुई नवाब को देखती रही।

नवाब ने दस्तक दी। दो बाँदियाँ दस्तबस्ता आ हाजिर हुईं। नवाब ने हुक्म दिया—इसे गुस्ल कराकर और सब्जपरी बनाकर हाजिर करो। उस पुरुष पाषाण की अपेक्षा स्त्रियों का संसर्ग गनीमत जानकर बालिका मन्त्रमुग्ध-सी उठकर उनके साथ चली गई।

इसी समय एक ख्वाजे ने आकर अर्ज की—खुदावन्द! साहब बहादुर बड़ी देर से हाजिर हैं।

'उनसे कह दो, अभी जनानखाने में हैं, अभी मुलाकात नहीं होगी।'

'आलीजाह! कलकत्ते से एक जरूरी... ...'

'मर गए, हमारे पीर उठ रही है।'

ख्वाजा चला गया।

लखनऊ के खास बाज़ार की बहार देखने योग्य थी। शाम हो चली थी और छिड़काव हो गया था। इक्कों और बहलियों, पालकियों और घोड़ों का अजीब जमघट था। आज तो हज़रतगंज अमीनाबाद का रंग ही कुछ और है। तब यही रौनक चौक की खास थी। बीच चौक में एक पानवाली की दुकान थी। फानूसों और रंगीन झाड़ों से जगमगाती हुई, शीशों के बीच स्वच्छ

बोतल में मदिरा की तरह रूपा दूकान पर बैठी थी। दो निहायत उन... लौंडियाँ पान की गिलौरियाँ बनाकर उसमें सोने के वर्क़ लपेट रही थीं। ... बीच में अठखेलियाँ भी कर रही थीं। आज-कल के कलकत्ते के का... थिएटर रंग मंच पर भी ऐसा मोहक और आकर्षक दृश्य नहीं देखा ... जैसा उस समय रूपा की दूकान पर था। ग्राहकों की भीड़ का पार न... और रूपा ख़ास ख़ास ग्राहकों का स्वागत कर, पान दे रही थी। बदले में ...वाली अशर्फ़ियों से उसकी गंगाजमुनी काम की तश्तरी भर रही थी। वे अ... रूपा की एक अदा, एक मुसकराहट—केवल एक कटाक्ष का मो... उन्हें पान की गिलौरियाँ तो लोगों को घाते में पड़ती थीं। एक नाज़ुक-अन्दाज़ नवाबज़ादे तामजाम में बैठे अपने मुसाहबों और कहारों के झुरमुट के साथ आये, और रूपा की दूकान पर तामजाम रोका। रूपा ने सलाम करके कहा—'मैं सदक़े शाहज़ादा साहब, ज़री बाँकी की एक गिलौरी क़बूल फ़र्मावें।' रूपा ने लौंडी की तरफ़ इशारा किया। लौंडी सहमती हुई सोने की एक रकाबी में ५, ७ गिलौरियाँ लेकर तामजाम तक गई। शाहज़ादे ने मुसकिराकर दो गिलौरियाँ उठाई, एक मुट्ठी अशर्फ़ियाँ तश्तरी में डालकर आगे बढ़े। एक ख़ाँ साहब बालों में मेंहदी लगाये, दिल्ली के बासली के जूते पहने तनज़ेब की चपकन कसे, सिर पर लैसदार ऊँची टोपी लगाये आये। रूपा ने बड़े तपाक से कहा—'अख्खा ख़ाँ साहब! आज तो हुज़ूर रास्ता भूल गये! अरे कोई है, आपको बैठने की जगह दे। अरी गिलौरियाँ तो लाओ।'

ख़ाँ साहब रूपा के रूप की तरह चुपचाप गिलौरियों के रस का घूँट पीने लगे। थोड़ी देर में एक अधेड़ मुसलमान अमीरज़ादे की शकल में आये। उन्हें देखते ही रूपा ने कहा—'अरे हुज़ूर तशरीफ़ ला रहे हैं। मेरे सरकार आप तो ईद के चाँद हो गये। कहिए, खैराफ़ियत है? अरी, मिर्ज़ा साहब को गिलौरियाँ दीं?' तश्तरी में खनाखन हो रही थी और रूपा की रूप और पान की हाट ख़ूब गरमा रही थी। ज्यों-ज्यों अन्धकार बढ़ता जाता था, रूपा पर रूप की दुपहरी चढ़ रही थी। धीरे-धीरे एक पहर रात बीत ...कों की भीड़ कुछ कम हुई। रूपा अब सिर्फ़ कुछ चुने हुए प्रेमी

खानकों से घुल-घुलकर बातें कर रही थी। धीरे-धीरे एक अजनबी आदमी सामने पर आकर खड़ा हो गया। रूपा ने अप्रतिभ होकर पूछा।

'आपको क्या चाहिए ?'

'आपके पास क्या क्या मिलता है ?'

'बहुत-सी चीज़ें। क्या पान खाइएगा ?'

'क्या हर्ज है ?'

रूपा के संकेत से दासी बालिका ने पान की तश्तरी अजनबी के आगे धर दी।

दो बीडियाँ हाथ में लेते हुए उसने कहा—'इनकी क़ीमत क्या है। बी साहबा !'

'जो कुछ जनाब दे सकें।'

'यह बात है! तब ठीक, जो कुछ मैं ले सका, वह लूँगा भी।' अजनबी हँसा नहीं। उसने भेदभरी दृष्टि से रूपा को देखा।

रूपा की भृकुटी ज़रा टेढ़ी पड़ी और वह एक बार तीव्र दृष्टि से देखकर फिर अपने मित्रों के साथ बातचीत में लग गई। पर बातचीत का रंग जमा नहीं। धीरे-धीरे मित्रगण उठ गये। रूपा ने एकान्त पाकर कहा—

'क्या हुज़ूर का मुझसे कोई ख़ास काम है ?'

'मेरा तो नहीं, मगर कम्पनी बहादुर का है।'

रूपा काँप उठी। वह बोली—'कम्पनी बहादुर का क्या हुक्म है ?'

'भीतर चलो तो कहा जाय।'

'मगर माफ़ कीजिए—आप पर यक़ीन कैसे ?'

'ओह ! समझ गया। बड़े साहब की यह चीज़ तो तुम शायद पहचानती ही होगी ?'

यह कहकर उन्होंने एक अँगूठी दूर से दिखा दी।

'समझ गई ! आप अन्दर तशरीफ़ लाइए।'

रूपा ने एक दासी को अपने स्थान पर बैठाकर अजनबी के साथ दूकान के भीतरी कक्ष में प्रवेश किया।

× × ×

दोनों व्यक्तियों में क्या बातें हुईं, यह तो हम नहीं जानते, मगर उसके ठीक तीन घण्टे बाद दो व्यक्ति काला लबादा ओढ़े दूकान से निकले और किनारे लगी हुई पालकी में बैठ गये। पालकी धीरे-धीरे उसी भूतोंवाली मस्जिद में पहुँची। उसी प्रकार मौलवी ने क़ब्र का पत्थर हटाया और एक मूर्ति ने क़ब्र के तहख़ाने में प्रवेश किया। दूसरे व्यक्ति ने एकाएक मौलवी को पटककर मुश्कें बाँध लीं और एक सङ्केत किया। क्षणभर में ५० सुसज्जित काली-काली मूर्तियाँ आ खड़ी हुईं और बिना एक शब्द मुँह से निकाले चुप-चाप क़ब्र के अन्दर उतर गईं।

[६]

अब फिर चलिए अनङ्गदेव के उसी रङ्ग मन्दिर में। सुख-साधनों से भर-पूर वही यह कक्ष आज सजावट ख़तम कर गया था। सहसा उल्कापात की तरह रङ्गीन हाँडियाँ, बिल्लौरी फ़ानूस और हज़ारा झाड़ सब जल रहे थे। तत्परता से, किन्तु नीरव बाँदियाँ और ग़ुलाम दौड़-धूप कर रहे थे। अनगिनत रमणियाँ अपने मदभरे होंठों की थालियों में भाव की मदिरा उँडेल रही थीं। उन सुरीले रागों की बौछारों में बैठे बादशाह वाजिदअली शाह शराबोर हो रहे थे। उस गायनोन्माद में मालूम होता था, कमरे के जड़ पदार्थ भी मत-वाले होकर नाच उठेंगे। नाचनेवालियों के ठुमके और नूपुर की ध्वनि सोते हुए यौवन से ठोकर मारकर कहती थी—'उठ, उठ, ओ मतवाले, उठ!' उन नर्तकियों के बढ़िया चिकनदोज़ी के सुवासित दुपट्टों से निकली हुई सुगन्ध उनके नृत्यवेग से विचलित वायु के साथ घुल मिलकर गदर मचा रही थी। पर सामने का सुन्दरी फव्वारा, जो सामने स्थिर ताल पर बीस हाथ ऊपर फेंककर रङ्गीन जलबिन्दु-राशियों से हाथापाई कर रहा था, देखकर कलेजा बिना उछले कैसे रह सकता था!

उसी मसनद पर बादशाह वाजिदअली शाह बैठे थे। एक गङ्गाजमनी काम का अलबोला वहाँ रखा था, जिसकी ख़मीरी मुश्की तम्बाकू जलकर एक अनोखी सुगन्ध फैला रही थी। चारों तरफ़ सुन्दरियों का झुरमुट उन्हें घेरे था। सभी अधनङ्गी, उन्मत्त, निर्लज्ज हो रही थीं। पास ही सुराही और [illegible] रखी थीं और बारी बारी से उन दुर्बल होठों को चूम रही थीं।

आधा मद पी-पीकर वे सुन्दरियाँ उन प्यालियों को बादशाह के होठों मे लगा देती थीं। वह आँखे बन्द करके उसे पी जाते थे। कुछ सुन्दरियाँ पान लगा रही थीं, कुछ अलबोले की निगाली पकड़े हुई थीं। दो सुन्दरियाँ दोनों तरफ पीकदान लिये खड़ी थीं, जिनमे बादशाह कभी-कभी पीक गिरा देते थे।

इस उल्लसित आमोद के बीच-बीच एक मुर्झाया हुआ पुष्प—कुचली हुई पान की गिलौरी—वही बालिका—बहुमूल्य हीरेखचित वस्त्र पहने—बादशाह के बिलकुल पास में लगभग मूर्छित और अस्त व्यस्त पड़ी थी। रह रहकर शराब की प्याली उसके मुख से लग रही थी और वह खाली कर रही थी। एक निर्जीव दुशाले की तरह बादशाह उसे अपने बदन मे लटाये मानो अपनी तमाम इन्द्रियों को एक ही रस मे शराबोर कर रहे थे। गम्भीर आधी रात बीत रही थी। सहसा इसी आनन्द-वर्षा में बिजली गिरी। कक्ष के उसी गुप्त द्वार को विदीर्ण कर क्षण भर मे वही रूपा काले आवरण से नखशिख ढके निकल आई। दूसरे क्षण में एक और मूर्ति वैसे ही आवेष्टन में बाहर निकल आई। क्षण भर बाद दोनों ने अपने आवेष्टन उतार फेंके। वही अग्निशिखा ज्वलन्त रूपा और उसके साथ गौराङ्ग कर्नल!

नर्तकियों ने एकदम नाचना-गाना बन्द कर दिया। बाँदियाँ शराब की प्यालियाँ लिये काठ की पुतली की तरह खडी की खडी रह गई। केवल फव्वारा ज्यो का त्यों आनन्द से उछल रहा था। बादशाह यद्यपि बिलकुल बदहवास थे, मगर यह सब देखकर वह मानो आँखे उठकर बोले—'ओह! रूपा-दिलरुबा! तुम और ऐ मेरे दोस्त कप्तान—इस वक्त यह क्या माजरा है?'

आगे बढकर और अपनी चुस्त पोशाक ठीक करते हुए तलवार की मूठ पर हाथ रख कप्तान ने कहा—'कल आलीजाह की बन्दगी में हाजिर हुआ था, मगर...'

'आप! मगर—इस वक्त इस रास्ते से! ऐ माजरा क्या है! अच्छा बैठो, हाँ जोहरा, एक प्याला मेरे दोस्त कर्नल के..'

'माफ करें हुजूर! इस समय मैं एक काम से सरकार की खिदमत में हाजिर हुआ हूँ।

'काम! वह काम क्या है?'—ऐंठते हुए बादशाह ने कहा।

'मैं तख़लिए में अर्ज़ किया चाहता हूँ।'

'तख़लिया! अच्छा, अच्छा, जोहरा! ओ क़ादिर!'

धीरे-धीरे रूपा को छोड़कर सभी बाहर निकल गईं। उस सौन्दर्य स्तम्भ में रह गई अकेली रूपा। रूपा को लक्ष्य करके कहा—'यह तो ग़ैर नहीं। रूपा! दिलरुबा! एक प्याला अपने हाथों से दो ता।' रूपा ने सुराही से शराब उँड़ेल लबालब प्याला भरकर बादशाह के होंठों से लगा दिया। हाय! लखनऊ के नवाब का यही अन्तिम प्याला था। उसे बादशाह ने आँखें बन्द कर पीकर कहा—'वाह प्यारी!'

'हाँ, अब तो वह बात! मेरे दोस्त...'

'हजूर को जरा रेजिडेंसी तक चलना पड़ेगा।'

बादशाह ने उछलकर कहा—'एँ, यह कैसी बात! रेजिडेंसी तक मुझे!'

'जहाँपनाह, मैं मजबूर हूँ, काम ऐसा ही है!'

'इसका मतलब?'

'मैं अर्ज नहीं कर सकता। कल मैं यही तो अर्ज करने हाजिर हुआ था।'

'ग़ैर मुमकिन! ग़ैर मुमकिन!' बादशाह गुस्से में होठ काटकर उठे, और अपने हाथ से सुराही से उँडेलकर ३-४ प्याले पी गये। धीरे धीरे उसी दीवार से एक-एक करके चालीस गोरे सैनिक सङ्गीन और किरचें सजाये कक्ष में घुस आये।

बादशाह देखकर बोले—'खुदा की क़सम, यह तो दग़ा है! क़ादिर!'

'जहाँपनाह, अगर खुशी से मेरी अर्जी क़बूल न करेंगे, तो खून-ख़राबी होगी। कम्पनी बहादुर के गोरों ने महल घेर लिया है। अर्ज यही है कि सरकार चुपचाप चले चलें।'

बादशाह धम्म से बैठ गये। मालूम होता है, क्षणभर के लिए उनका नशा उतर गया। उन्होंने कहा—'तुम तब क्या मेरे दुश्मन होकर मुझे क़ैद करने आये हो।'

'मैं हुजूर का दोस्त हर तरह हुजूर के आराम और फ़रहत का ख़्याल रखता हूँ, और हमेशा रखूँगा।'

बादशाह ने रूपा की ओर देखकर कहा—'रूपा! रूपा! यह क्या

माजरा है ? तुम भी क्या इस मामले में हो ! एक प्याला—मगर नहीं, अब नहीं। अच्छा—सब साफ साफ़ सच कहो ! कर्नल मेरे दोस्त नहीं, नहीं अच्छा कर्नल ! सब खुलासावर बयान करो।'

'सरकार, ज्यादा मैं कुछ नहीं कह सकता। कम्पनी बहादुर का ख़ास परवाना लेकर खुद लाट साहब तशरीफ लाये हैं और आलीजाह से कुछ मशविरा किया चाहते हैं।

'मगर यहाँ ?'

'यह नामुमकिन है।'

बादशाह ने कर्नल की तरफ देखा। वह तना खड़ा था और उसका हाथ तलवार की मूठ पर था।

'समझ गया, सब समझ गया।' यह कहकर बादशाह कुछ देर हाथों से आँख ढाँपकर बैठ गये। कदाचित् उसकी सुन्दरी रसभरी आँखों में आँसू भर आये हो।

रूपा ने पास आकर कहा—'मेरे खुदावन्द, बाँदी...'

'हट जा, ऐ नमकहराम, रजील, बाजारू औरत !'

बादशाह ने यह कहकर एक ठोकर लगाई और कहा—'तब चलो ! मैं चलता हूँ खुदा हाफिज।'

पहले बादशाह, पीछे कप्तान, उसके पीछे रूपा, और सबके अन्त में एक एक करके सिपाही उसी दरार में विलीन हो गये। महल में किसी को कुछ मालूम न था। वह मूर्तिमान् सङ्गीत—वह उमड़ता हुआ आनन्द समुद्र सदा के लिए मानो किसी जादूगर ने निर्जीव कर दिया।

[७]

कलकत्ते के एक उजाड़-से भाग में एक बहुत विशाल मकान में वाजिद-अली शाह, नजरबन्द थे। ठाट लगभग वही था। सैकड़ों दासियाँ, बाँदियाँ और वेश्याएँ भरी हुई थीं, पर वह लखनऊ का रङ्ग कहाँ !

खाना खाने का वक्त हुआ, और दस्तरखान पर खाना चुना गया, तो बादशाह ने पटक-पटककर फेंक दिया। अँगरेज अफ़सर ने घबड़ाकर पूछा—'खाने में क्या नुक्स है !'

जवाब दिया गया—'नमक खराब है।'

'नवाब कैसा नमक खाते हैं?'

'एक मन का डला रखकर उस पर पानी की धार छोड़ी जाती है. घुलते घुलते छोटा-सा टुकड़ा रह जाता है तब बादशाह के खाने में वह नमक इस्तेमाल होता है।

अँगरेज अधिकारी मुसकराता चला गया। क्यों? ओह! हम लोगों के समझने के योग्य यह भेद नहीं।

उसी रसरङ्ग की दीवारों के भीतर अब सरकारी दफ़्तर खुल गये हैं और यह अमर क़ैसर बाग मानो रँडुए की तरह खड़ा उस रसीली रात की याद में सिर धुन रहा है।

प्रश्नावली

१ वाजिदअली शाह का चरित्र-चित्रण करो।

२ रूपा कौन थी?

३ रङ्गमहल के गुप्त द्वार का पता अँगरेजों ने किस प्रकार लगाया?

४ इस कहानी का शीर्षक पानवाली क्यों रखा गया है?

५ इस कहानी के पढ़ने से भारत की स्थिति पर क्या प्रकाश पड़ता है?

सम्राट् का स्वत्व

श्री राय कृष्णदास

(सं० १९५९)

आपका जन्मस्थान काशी है। आप ललित-कलाओं के प्रेमी और ममज्ञ हैं? इस बात का ज्वलन्त उदाहरण है—काशी का भारत कला भवन।

आप भावुक कवि हैं, गद्य काव्य-लेखक हैं, साथ ही उत्कृष्ट कहानी-लेखक भी हैं। आपकी रचनाओं में दार्शनिक विचारों का पुट रहता है। आपकी कहानियाँ भाव प्रधान होती हैं। भाषा संस्कृतगर्भित रहती है, पर व्यावहारिक भाषा का भी जहाँ तहाँ बड़ा सुन्दर प्रयोग मिलता है।

आपकी मुख्य रचनाएँ ये हैं—

कविता—भावुक।

गल्प संग्रह—अनाख्या, सुधांशु।

गद्यकाव्य—साधना छायापथ, प्रवाल, सलाप।

'एक वह और एक मैं! किन्तु मेरा कुछ भी नहीं! इस जीवन में कोई पद नहीं! वह समस्त साम्राज्य पर निष्कटक राज्य करे और मुझे एक-एक कोड़ी के लिए उसका मुँह देखना पड़े! जिस कोख में उसने नौ महीने बिताये हैं, मैं भी उसी कोख से पैदा हुआ हूँ। जिस स्तन ने शैशव में उसका पालन किया, उसी स्तन से मेरा भी शरीर बढ़ा है। जिस स्नेह से उसका पालन हुआ है, उसी स्नेह का मैं भी पूर्ण अधिकारी था। पिता की जिस गोद में वह बैठकर खेला है, मैंने भी उसी गोद में ऊधम मचाया है। हम दोनों एक ही माता पिता के समान स्नेह और वात्सल्य के भागी रहे हैं। हम लोगों की बाल्यावस्था बराबर ही के खेल कूद और नटखटों में बीती है। हम लोगों ने एक ही साथ गुरु के यहाँ एक ही पाठ पढ़ा और याद किया। एक के दोष को दूसरे ने छिपाया। एक के लिए दूसरे ने मार खाई। संग में जंगल जंगल शिकार के पीछे मारे-मारे फिरे। भूख लगने पर एक कौर मैंने आधा मैंने खाया, आधा उसने। तब किसी बात का अन्तर न था—एक प्राण दो शरीर थे।

'पर आज समय ही तो है। वह सिंहासन पर बैठकर आज्ञा चलाये, मैं उसके सामने भेंट लेकर नत होऊँ। कुत्ते के टुकड़े की तरह जो कुछ वह फेंक दे, सो मेरा। नहीं तो पिता-पितामह की, माता-प्रमाता की, पूर्वजों की इस विशाल सम्पत्ति पर मेरा बाल भर भी अधिकार नहीं! आह! दैव दुर्विपाक! एक छोटे से छोटे कारबारी के इतना भी मेरा अधिकार नहीं। पूर्व-महाराज की मुझ औरस संतान का कोई ठिकाना नहीं। क्यों इसी संयोगमात्र से कि मैं छोटा हूँ और वह बड़ा। ओह! यदि आज मैं वणिक-पुत्र होता, तो भी पैतृक-सम्पत्ति का आधा भाग उसकी नाक पकड़कर रखवा लेता। किन्तु धिक्कार है मेरे क्षत्रिय कुल में जनमने पर कि मैं दूर्वा की तरह प्रतिक्षण पद-दलित होकर भी जीवित रहूँ। हरा भरा रहूँ। 'राजकुमार' कहा जाऊँ—'छोटा महाराज' कहा जाऊँ! खाली घड़े के शब्द की तरह, रिक्त बादल की गरज की तरह कोरा अभिमान कि इधर से उधर टक्कर खाता फिरूँ! शिवनिर्माल्य की तरह किसी अर्थ का न रहूँ। अपने ही घर में, अपने ही माता पिता के आँगन में अनाथ की तरह ठोकर खाता फिरूँ! पिंजरे के सिंह की तरह देखा

जाऊँ। आह! यह स्थिति असह्य है! मेरा क्षत्रिय रक्त तो इसे एक क्षण भर भी सहन नहीं कर सकता। चाहे जैसे हो, इससे छुटकारा पाना होगा। या तो मैं नहीं या यह स्थिति नहीं। देखूँ किसकी जीत होती है।

'एक क्षण का तो काम है। एक प्रहार से उसका अन्त होता है। किन्तु क्या कायरों की तरह धोखे में प्रहार। प्रताप के लिए तो यह काम होने का नहीं, यह तो चोरों का काम है! दस्युओं का काम है! हत्यारों की वृत्ति है!

कुमार प्रतापवर्धन का चेहरा तमतमाया हुआ था। ओठ फड़क रहे थे। नस नस में तेजी से खून दौड़ रहा था। मारे क्रोध के उसके पैर ठिकाने नहीं पड़ते थे। सध्या का शीतल समीर उसके उष्ण शरीर से टकराकर भस्म सा हुआ जाता था। कुमार को बोध होता था कि सारा प्रासाद भूकम्प से ग्रस्त है। अनेकानेक प्रेत-पिशाच उसे उखाड़े डालते हैं। क्षितिज में सध्या की लालिमा नहीं है, भयकर आग लगी हुई है। प्रलयकाल में देर नहीं।

जिस प्रकार ज्वालामुखी के लावा का प्रवाह आँख मूँदकर दौड़ पड़ता है, उसे ध्वस्त करता चलता है, उसी प्रकार राजकुमार का मानसिक आवेश भी अधा होकर दौड़ रहा था।

'क्यों प्रताप, आज अकेले ही यहाँ क्यों टहल रहे हो?

अचानक पीयूषवर्षा हो उठी। राजकुमार की ओर उसकी भाभी—महारानी—चली आ रही थीं। महारानी का प्रताप पर भाई जैसा प्रेम, मित्र जैसा स्नेह, और पुत्र जैसा वात्सल्य था। राजकुमार उसके सामने आते ही बालक जैसे हो जाते, पर इस समय वे कुछ न बोले। महारानी ने फिर प्रश्न किया, पर राजकुमार अवाक् थे। कुछ क्रोध के कारण नहीं, महारानी के शब्द कान में पड़ते ही उनके हृदय को भीषण धक्का लगा था। क्रोध से भारी प्रतिघात हुआ था। और राजकुमार के लिए उस प्रतिघात का सहना असम्भव था। यदि प्रतप्त अगार औचक शीतल पानी में पड़ जाय तो शतधा फट जाता है। उसी तरह उनके हृदय की दशा हो रही थी। और जब महिषी ने तीसरी बार प्रश्न किया, तब प्रताप बच्चों की तरह रो पड़ा।

राजमहिषी इस गोरखधन्धे को जरा भी न समझ सकीं। उन्हों ने फिर [illegible] से पूछा—'बोलो प्रताप, आज क्या बात है—तुम पर ऐसा कौन

कष्ट पड़ा कि तुम रो रहे हो, मैंने तो कभी तुम्हारी ऐसी दशा न देखी। आज दोनों भाइयों में झगड़ा तो नहीं हुआ ?'

प्रताप के आँसुओं की झड़ी ज्यों की त्यों जारी थी। कष्ट से हिचकियाँ लेते लेते उसने उत्तर दिया, पर वे समझ न सकीं।

कुमार का हाथ अपने हाथ से थामकर दूसरा हाथ पीठ पर फेरते हुए वे बोलीं—'शान्त हो, प्रताप ! मेरा हृदय फटा जाता है। बोलो, बताओ, क्या बात है ? चलो तुम्हारा उनका मेल करा दूँ।'

राजमहिषी ने समझा कि इसके सिवा अन्य कोई कारण नहीं। प्रताप ने बड़ी कठिनता से अपने आपको सँभालकर कहा—'भला मैं किस बल पर भाई का सामना करूँगा ?'

'प्रताप, ऐसी कटु बात न कहो। तुम्हें स्नेह का बल है, स्वत्व का बल है। इससे बढ़कर कौन बल हो सकता है। बोलो क्या कारण है ? कहो, मेरा हृदय क्रन्दन कर रहा है।'

महारानी का कंठ रुँध गया था, उनकी आँखें भर आई थीं।

'कुछ नहीं भाभी ! मन ही तो है। यों ही कुछ बीते दिनों की याद आ गई। स्नेहमयी माता नहीं, पर तुम तो हो। अब तक मैं निरा बच्चा ही बना हुआ था। बस, यह बचपन की एक तरंग थी।'

'नहीं प्रताप, तुम्हें मेरी शपथ है, मुझे अपना दुःख सुना दो। चाहे तुम्हारा हृदय ऐसा करने से हलका न हो, पर मेरा हृदय अवश्य हलका हो जायगा।'

प्रताप ने उदासीन मुस्कराहट, छूँछी हँसी हँसते हुए कहा—'कुछ नहीं भाभी, कुछ हो तब तो ! सन्ध्या की उदासी, निराली अटारी, मन में कुछ उमंग आ गई थी। अब कुछ नहीं। चलिए, आज हम लोग घूमने न चलेंगे !'

'प्रताप, तुम टाल रहे हो। इसमें मुझे दुःख होता है। आज तक तुमने मुझसे कुछ छिपाया नहीं। जो दुःख-सुख हुआ, सब कहा। आज यह नयी बात क्यों ?'

प्रताप फिर बच्चों की तरह सिसकने लगा। उसने महिषी के चरणों की धूलि सिर पर लगा ली।

जा"भाभी तुम्हारा बच्चा ही ठहरा, कहूँ नहीं तो काम कैसे चले। कहूँगा, सब कहूँगा। पर क्षमा करो। इस समय चित्त ठिकाने नहीं है। फिर पूछ लेना।'

'अच्छा घूमने तो चलो।'

'नहीं, इस समय मुझे अकेले छोड़ दो भाभी।'

'क्यों तुम्हीं ने अभी प्रस्ताव किया था न?

'भाभी, वह कपट था।'

'प्रताप, तुम—और मुझसे कपट करो! कुमार, मैं इसे देवताओं की अकृपा के सिवा और क्या कहूँ, अच्छा जाती हूँ। किन्तु देखो, तुम्हें अपना हृदय मेरे सामने खोलना पडेगा।'

रानी भी रोती-रोती चली गई। राजकुमार रिक्त दृष्टि से उसका जाना देखता रहा। फिर वह खड़ा न रह सका, वहीं अटारी के मुँडेरे पर बैठ गया।

महारानी ने देखा कि सम्राट् उद्यान में खड़े हैं। रथ तैयार है। उन्होंने भी महारानी को अकेली आते देखा—उसका उतरा हुआ मुँह देखा, लट-पटाती गति देखी। हृदय में एक धक्-सी हो गई। पूछ बैठे—

'क्यों' प्रताप कहाँ है? और तुम्हारी यह क्या दशा है?

'कुछ नहीं'—महिषी ने भर्राये स्वर से कहा—'चलिए घूमने।'

'आज वह न चलेगा? बात क्या है, कुछ कहो तो?'—महाराज ने रूखे स्वर से पूछा।

भृत्यवर्ग स्तम्भित था, चकित था। हाथ बाँधे हुए खड़ा तो था, पर हृदय में काँप रहा था—क्या होने को है?

राजमहिषी ने महाराज के निकट जाकर धीरे-धीरे कुछ बातें की।

महाराज ने कहा—'यह सब कुछ नहीं, चलो प्रताप से एक बार मैं तो बातें कर लूँ।'

× × ×

प्रताप और महाराज आमने सामने थे। प्रताप की आँखें भूमि देख रही थीं। किन्तु भौंहें तन उठी थीं। महाराज हिमालय की तरह शान्त थे। —होंने जिज्ञासा की—

'भाई प्रताप, आज कैसे हो रहे हो?'

किन्तु कुमार ने कोई उत्तर न दिया।

सम्राट् ने उनका हाथ थाम लिया और स्नेह से उसे सहलाने लगे। प्रताप के शरीर में एक झल्लाहट-सी होने लगी। विरक्ति और घृणा से। क्रोध ने कहा कि एक झटका दो और हाथ छुड़ा लो। साहस भी था। पर भ्रातृ-भाव ने यह नौबत न आने दी। तो भी प्रताप ने कोई उत्तर न दिया।

'प्रताप, न बोलोगे? हम लोगों के जन्म जन्म के स्नेह की तुम्हें शपथ है जो मौन रहो।'

'भैया—'यहाँ प्रताप का गला रुक गया। बड़ी चेष्टा करते हुए उसने कहा—'अब स्नेह नहीं रह गया।'

'क्यों, क्या हुआ?' महाराज उस उत्तर से कुछ चकित हो गये।

'भैया—'क्षत्रिय रक्त ने जोर किया और नदी का बाँध टूट गया—प्रताप ने वयस्क होने के बाद पहली बार भाई से आँखें मिलाकर कहना शुरू किया—'जिस जीवन की कोई हस्ती न हो, वह व्यर्थ है। हम दोनों सगे भाई हैं तो भी—मैं कोई नहीं और आप चक्रवर्ती। यह कैसे निभ सकता है?'

'तो लो तुम्हीं शासन चलाओ प्रताप।'

महाराज ने अपना खड्ग प्रताप की ओर बढ़ा दिया।

प्रताप ने इस स्थिति की स्वप्न में भी कल्पना न की थी। वह किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गया। महाराज साग्रह उसके हाथ में खड्ग देने लगे और वह पैरों पड़ने के सिवा कुछ न कर सका। तब महाराज ने उसे छाती से लगा लिया और समुद्र के-से गम्भीर स्वर में कहने लगे—

'सुनो प्रताप, सम्राट् राष्ट्र की एक व्यक्ति में केन्द्रित सत्ता है। भाई हो अथवा बेटा, कोई उसे बाँट नहीं सकता। यह वैभव देखकर न चकपकाओ। राष्ट्र ने अपनी महत्ता दिखाने के लिए और उसे स्वयं प्रभावान्वित होने के लिए इस वैभव को—इन अधिकारों को, राजा में सन्नद्ध किया है। ये अधिकार सम्पत्ति के, विलासिता के, स्वेच्छाचारिता के द्योतक नहीं। यहाँ दराज की कमाई नहीं है जो तोड़कर टूटती और जोड़कर ही बँटती भी है। यह है शक्ति की कमाई, और वह शक्ति क्या है? कच्चे सूत हाथी को बाँध लेते हैं, किन्तु कब? जब एक में मिलकर वे रस्सी बन जाते हैं, तब। हाँ, कौटुम्बिक

जीवन में यदि हम तुम दो हों तो मैं अवश्य दण्डनीय हूँ। समझो भाई!'

इसी समय राजमहिषी मुस्कराती हुई महाराज से कहने लगी—'नाथ, इसे लक्ष्मी चाहिए लक्ष्मी—आप समझे कैसी—गृहलक्ष्मी।'

कुमार लज्जित हो गया। फिर वह हँसता हुआ सम्राट् सम्राज्ञी दोनों को सम्बोधित कर कहने लगा—

'क्या समय बिता के ही घूमने चलिएगा!'

प्रश्नावली

१—प्रतापवर्धन के आवेश का कारण क्या था और उसको शान्ति कैसे हुई?

२—राजमहिषी की बातों का प्रताप के हृदय पर क्या असर पड़ा?

३—सम्राट् का स्वत्व क्या है?

४—निम्नलिखित वाक्यों का अर्थ स्पष्ट कीजिये—

(क) यह तराजू की कमाई नहीं है जो तौलकर ही जुटती और तौलकर ही बँटती है?

(ख) क्षत्रिय-रक्त ने जोर किया और नदी का बाँध टूट गया।

५—इस कहानी में मुहावरों का अपने वाक्यों में प्रयोग कीजिए।

पछतावा

श्री प्रेमचन्द

(सं० १९३७—१९९३)

आपका जन्म काशी के पास मढ़वा नामक गाँव में हुआ। आपका असली नाम धनपत राय है। आप पहले उर्दू में शिक्षा पाते थे। सन् १९१९ से आपने हिन्दी में लिखना आरम्भ किया। आपकी परिमार्जित लेखनी द्वारा निसृत कहानियों और उपन्यासों की धूम मच गया। हिन्दी प्रेमियों ने आपके उपन्यासों पर मुग्ध होकर आपको 'उपन्यास-सम्राट' की पदवी से विभूषित किया।

आपकी कहानियों में चरित्र-चित्रण और मानसिक-भावों का विश्लेषण अत्यन्त सुन्दर है। आपकी भाषा सीधी सादी और सुगठित होती है। आपके वर्णनों में स्वाभाविकता

रहती है। आप वर्ण्य की सजीव प्रतिमा खड़ी कर देते हैं। आपकी मुख्य कृतियाँ ये हैं—

उपन्यास—प्रतिज्ञा, सेवासदन, प्रेमाश्रम, रङ्गभूमि, निर्मला, कायाकल्प, गबन, कर्मभूमि गोदान।

नाटक—संग्राम, प्रेम की वेदी, कर्बला।

गल्प-संग्रह—नवनिधि, सप्तसरोज, प्रेमपूर्णिमा, प्रेमपच्चीसी, प्रेमतीर्थ, प्रेमद्वादशी, प्रेरणा, प्रेमप्रसून, मानसरोवर आदि।

पण्डित दुर्गानाथ जब कालेज से निकले तो उन्हें जीवन-निर्वाह की चिन्ता उपस्थित हुई। वे दयालु और धार्मिक पुरुष थे। इच्छा थी कि ऐसा काम करना चाहिए जिससे अपना जीवन भी साधारणत: सुखपूर्वक व्यतीत हो और दूसरों के साथ भलाई और सदाचरण का भी अवसर मिले। वे सोचने लगे—यदि किसी कार्यालय में क्लर्क बन जाऊँ तो अपना निर्वाह तो हो सकता है, किन्तु सर्वसाधारण से कुछ भी सम्बन्ध न रहेगा। वकालत में प्रविष्ट हो जाऊँ तो दोनों बातें सम्भव हैं, किन्तु अनेकानेक यत्न करने पर भी अपने को पवित्र रखना कठिन होगा। पुलिस विभाग में दीनपालन और परोपकार के लिए बहुत से अवसर मिलते रहते हैं; किन्तु एक स्वतन्त्र और सद्विचारप्रिय मनुष्य के लिए वहाँ की हवा हानिप्रद है। शासन-विभाग में नियम और नीतियों की भरमार रहती है। कितना ही चाहो पर वहाँ कड़ाई और डाँट-डपट से बचे रहना असम्भव है। इसी प्रकार बहुत सोच-विचार के पश्चात् उन्होंने निश्चय किया कि किसी जमींदार के यहाँ 'मुख्तार आम' बन जाना चाहिए। वेतन तो अवश्य कम मिलेगा; किन्तु दीन खेतिहरों से रात दिन सम्बन्ध रहेगा—उनके साथ सद्व्यवहार का अवसर मिलेगा। साधारण जीवन-निर्वाह होगा और विचार दृढ़ होंगे।

कुँवर विशालसिंहजी एक सम्पत्तिशाली जमींदार थे। पंडित दुर्गानाथ ने उनके पास जाकर प्रार्थना की कि मुझे अपनी सेवा में रखकर कृतार्थ कीजिए। कुँवर साहब ने इन्हें सिर से पैर तक देखा और कहा—पंडितजी, आपको अपने यहाँ रखने में मुझे बड़ी प्रसन्नता होती, किन्तु आपके योग्य मेरे यहाँ कोई स्थान नहीं देख पड़ता।

दुर्गानाथ ने कहा—मेरे लिए किसी विशेष स्थान की आवश्यकता नहीं है। मैं हर एक काम कर सकता हूँ। वेतन आप जो कुछ प्रसन्नता-पूर्वक देंगे, मै स्वीकार करूँगा।

मैंने तो यह सकल्प कर लिया है कि सिवा किसी रईस के और किसी की नौकरी न करूँगा। कुँवर विशालसिंह ने अभिमान मे कहा—रईस की नौकरी नौकरी नहीं, राज्य है। मैं अपने चपरासियो को दो रुपया माहवार देता हूँ और वे तजेब के अँगरखे पहनकर निकलते हैं। उनके दरवाजों पर घोडे बँधे हुए हैं। मेरे कारिन्दे पाँच रुपये मे अधिक नहीं पाते, किन्तु शादी-विवाह वकीलों के यहाँ करते हैं। न जाने उनकी कमाई में क्या बरकत होती है। बरसों तनख्वाह का हिसाब नहीं करते। कितने ऐसे हैं जो बिना तनख्वाह कारिन्दगी या चपरासगीरी को तैयार बैठे हैं। परन्तु अपना यह नियम नहीं। समझ लीजिए, मुख्तार-आम अपने इलाके में एक बडे जमींदार से भी अधिक रोब रखता है। उसका कारबार, उसकी हुकूमत छोटे छोटे राजाओं से कम नहीं। जिसे इस नौकरी का चस्का लग गया है, उसके सामने तहसीलदारी झूठी है।

पण्डित दुर्गानाथ ने कुँअर साहब की बातो का समर्थन किया, जैसा कि करना उनके सभ्यतानुसार उचित था। वे दुनियादारी में अभी कच्चे थे, बोले—मुझे अब तक किसी रईस की नौकरी का चसका नहीं लगा है। मैं तो अभी कालेज से निकला आता हूँ। और न मैं इन कारणो मे नौकरी करना चाहता हूँ, जिन्हें आपने वर्णन किया। किन्तु इतने कम वेतन म मेरा निर्वाह न होगा। आपके और नौकर असामियों का गला दबाते होंगे। मुझसे मरते समय तक ऐसे कार्य न होंगे। यदि सच्चे नौकर का सम्मान निश्चय है, तो मुझे विश्वास है कि बहुत शीघ्र आप मुझसे प्रसन्न हो जायँगे।

कुँवर साहब ने बडी दृढ़ता से कहा—हाँ, यह तो निश्चय है कि सत्य-वादी मनुष्य का आदर सब कहीं होता है। किन्तु मेरे यहाँ तनख्वाह अधिक नहीं दी जाती।

जमींदार के इस प्रतिष्ठा शून्य उत्तर को सुनकर पण्डितजी कुछ खिन्न हो बोले—तो फिर मजबूरी है। मेरे द्वारा इस समय कुछ कष्ट आपको

पहुँचा हो तो क्षमा कीजिएगा। किन्तु मैं आपसे यह कह सकता हूँ कि ईमानदार आदमी आपको इतना सस्ता न मिलेगा।

कुँवर साहब ने मन में सोचा कि मेरे यहाँ सदा अदालत-कचहरी लगी ही रहती है। सैकड़ों रुपये तो डिगरी तजवीजों तथा और और अँगरेज़ी काग़ज़ों के अनुवाद में लग जाते हैं। एक अँगरेजी का पूर्ण पण्डित सहज ही में मुझे मिल रहा है। सो भी अधिक तनख्वाह नहीं देनी पड़ेगी। इसे रख लेना ही उचित है। लेकिन पण्डितजी की बात का उत्तर देना आवश्यक था, अतः कहा—महाशय, सत्यवादी मनुष्य को कितना ही कम वेतन दिया जावे, किन्तु वह सत्य को न छोड़ेगा और न अधिक वेतन पाने से बेईमान सच्चा बन सकता है। सच्चाई का रुपये से कुछ सम्बन्ध नहीं। मैंने ईमानदार कुली देखे हैं और बेईमान बड़े-बड़े धनाढ्य पुरुष। परन्तु अच्छा, आप एक सज्जन पुरुष हैं। आप मेरे यहाँ प्रसन्नतापूर्वक रहिए। मैं आपको एक इलाके का अधिकारी बना दूँगा और आपका काम देखकर तरक्की भी कर दूँगा।

दुर्गानाथजी ने २०) मासिक पर रहना स्वीकार कर लिया। यहाँ से कोई ढाई मील पर कई गाँवों का एक इलाक़ा चाँदपार के नाम से विख्यात था। पण्डितजी इसी इलाक़े के कारिन्दे नियत हुए।

[२]

पण्डित दुर्गानाथ ने चाँदपार के इलाक़े में पहुँचकर अपने निवासस्थान को देखा, तो उन्होंने कुँवर साहब के कथन को बिलकुल सत्य पाया। यथार्थ में रियासत की नौकरी सुख-सम्पत्ति का घर है। रहने के लिए सुन्दर बँगला है, जिसमें बहुमूल्य बिछौना बिछा हुआ था, सैकड़ों बीघे की सीर, कई नौकर-चाकर, कितने ही चपरासी, सवारी के लिए एक सुन्दर टाँगन, सुख और ठाट-बाट के सारे सामान उपस्थित। किन्तु इस प्रकार की सजावट और विलासयुक्त सामग्री देखकर उन्हें उतनी प्रसन्नता न हुई। किन्तु इसी सजे हुए बँगले के चारों ओर किसानों के झोपड़े थे, फूस के घरों में मिट्टी के बर्तनों के सिवा और सामान ही क्या था। वहाँ के लोगों में वह बँगला कोट के नाम से विख्यात था। लड़के उसे भय की दृष्टि से देखते। उसके चबूतरे पर पैर रखने का उन्हें साहस न पड़ता था। इस दीनता के बीच में यह ऐश्वर्य

उनके लिए न्याय से कोसों दूर था। किसानों की यह दशा थी कि सामने आते हुए थरथर काँपते थे। चपरासी लोग उनसे ऐसा बरताव करते थे कि पशुओं के साथ भी वैसा नहीं होता है।

पहले ही दिन सौ किसानों ने पण्डितजी को अनेक प्रकार के पदार्थ भेंट के रूप में उपस्थित किये, किन्तु जब वे सब लौटा दिये गये तो उन्हें बहुत ही आश्चर्य हुआ। किसान प्रसन्न हुए, किन्तु चपरासियों का रक्त उबलने लगा। नाई और कहार ख़िदमत को आये, किन्तु लौटा दिये गये। अहीरों के घरों से दूध से भरा एक मटका आया, वह भी वापस हुआ। तमोली एक टोली पान लाया, किन्तु वह भी स्वीकार न हुआ। असामी आपस में कहने लगे कि धरमात्मा पुरुष आये हैं। परन्तु चपरासियों को तो ये नई बातें असह्य हो गईं। उन्होंने कहा—हजूर, अगर आपको ये चीजें पसन्द न हों तो न लें, मगर रस्म को तो न मिटावें।

अगर कोई दूसरा आदमी यहाँ आवेगा तो उसे नये सिरे से यह रस्म बाँधने में कितनी दिक्कत होगी! यह सब सुनकर पडितजी ने केवल यही उत्तर दिया—जिसके सिर पर पड़ेगा वह भुगत लेगा। मुझे इसकी चिन्ता करने की क्या आवश्यकता? एक चपरासी ने साहस बाँधकर कहा—इन असामियों को आप जितना गरीब समझते हैं, उतने गरीब ये नहीं हैं। इनका ढग ही ऐसा है, भेष बनाये रहते हैं। देखने में ऐसे सीधे-सादे मानो बेसींग की गाय हैं, लेकिन सच मानिए, इनमें का एक-एक आदमी हाईकोर्ट का वकील है।

चपरासियों के इस वाद-विवाद का प्रभाव पडितजी पर कुछ न हुआ। उन्होंने प्रत्येक गृहस्थ से दयालुता और भाईचारे का आचरण करना आरम्भ किया। सवेरे से आठ बजे तक वह गरीबों को बिना दाम औषधियाँ देते, फिर हिसाब-किताब का काम देखते। उनके सदाचरण ने असामियों को मोह लिया। मालगुजारी का रुपया जिसके लिए प्रतिवर्ष कुरकी तथा नीलाम की आवश्यकता होती थी, इस वर्ष एक इशारे पर वसूल हो गया। किसानों ने अपने भाग सराहे और वे मनाने लगे कि हमारे सरकार की दिनों दिन [illegible] हो।

[२]

कुँवर विशालसिंह अपनी प्रजा के पालन-पोषण पर बहुत ध्यान रखते थे। वे बीज के लिए अनाज देते और मजूरी और बैलों के लिए रुपये, फसल कटने पर एक का डेढ़ वसूल कर लेते। चाँदपार के कितने ही असामी इनके ऋणी थे। चैत का महीना था। फसल कटकर खलियानों में आ रही थी। खलियानों में से कुछ नाज घर आने लगा था।

इसी अवसर पर कुँवर साहब ने चाँदपारवालों को बुलाया और कहा—हमारा नाज और रुपया बेबाक कर दो। यह चैत का महीना है। जब तक कड़ाई न की जाय, तुम लोग डकार नहीं लेते। इस तरह काम नहीं चलेगा।

बूढ़े मलूका ने कहा—सरकार, भला असामी कभी अपने मालिक से बेबाक हो सकता है? कुछ अभी ले लिया जाय, कुछ फिर दे देवेंगे। हमारी गरदन तो सरकार की मुट्ठी में है।

कुँवर साहब—आज कौड़ी कौड़ी चुकाकर यहाँ से उठने पाओगे। तुम लोग हमेशा इसी तरह हीला हवाला किया करते हो।

मलूका (विनय के साथ) – हमारा पेट है सरकार की रोटियाँ हैं, हमको और क्या चाहिए। जो कुछ उपज है वह सब सरकार ही की है।

कुँवर साहब से मलूका की वाचालता सही न गई। उन्हें इस पर क्रोध आ गया, राजा, रईस ठहरे। उन्होंने बहुत कुछ खरी-खोटी सुनाई और कहा—कोई है! जरा इस बुड्ढे का कान तो गरम करे, बहुत बढ़-बढ़कर बातें करता है। उन्होंने तो कदाचित् धमकाने की इच्छा से कहा, किन्तु चपरासियों की आँखों में चाँदपार खटक रहा था। एक तेज चपरासी कादिर खाँ ने लपककर बूढ़े की गर्दन पकड़ी और ऐसा धक्का दिया कि बेचारा जमीन पर जा गिरा। मलूका के दो जवान बेटे वहाँ चुपचाप खड़े थे। बाप की ऐसी दशा देखकर उनका रक्त गर्म हो उठा। दोनों झपटे और कादिर खाँ पर टूट पड़े। धमाधम शब्द सुनाई पड़ने लगा। खाँ साहब का पानी उतर गया, साफा अलग जा गिरा। अचकन के टुकड़े टुकड़े हो गये। किन्तु जबान चलती रही।

मलूका ने देखा, बात बिगड़ गई। वह उठा और कादिर खाँ को छुड़ाकर अपने लड़कों को गालियाँ देने लगा।

जब लड़कों ने उसको डाँटा, तब दौड़कर कुँवर साहब के चरणों पर गिर पड़ा। पर बात यथार्थ में बिगड़ गई थी। बूढ़े के इस विनीत भाव का कुछ प्रभाव न हुआ। कुँवर साहब की आँखों से मानो अङ्गारे निकल रहे थे। वे बोले—बेईमान, आँखों के सामने से दूर हो जा। नहीं तो खून पी जाऊँगा।

बूढ़े के शरीर में रक्त तो अब वैसा न रहा था, किन्तु कुछ गर्मी अवश्य थी। समझता था कि ये कुछ न्याय करेंगे, परन्तु यह फटकार सुनकर बोला—सरकार बुढ़ापे में आपके दरवाजे पर पानी उतर गया और तिस पर सरकार हमीं को डाँटते हैं। कुँवर साहब ने कहा—तुम्हारी इज्जत अभी क्या उतरी है, अब उतरेगी।

दोनों लडके सरोष बोले—सरकार, अपना रुपया लेंगे कि किसी की इज्जत लेंगे?

कुँवर साहब (ऐंठकर)—रुपया पीछे लेंगे। पहले देखेंगे कि तुम्हारी इज्जत कितनी है!

[४]

चाँदपार के किसान अपने गाँव पर पहुँचकर पण्डित दुर्गानाथ से अपनी रामकहानी कह ही रहे थे कि कुँवर साहब का दूत पहुँचा और खबर दी कि सरकार ने आपको अभी-अभी बुलाया है।

दुर्गानाथ ने असामियों को परितोष दिया और आप घोड़े पर सवार होकर दरबार में हाजिर हुए।

कुँवर साहब की आँखें लाल थीं। मुख की आकृति भयङ्कर हो रही थी। कई मुख्तार और चपरासी बैठे हुए आग पर तेल डाल रहे थे।

पण्डितजी को देखते ही कुँवर साहब बोले—चाँदपारवालों की हरकत आपने देखी?

पण्डितजी ने नम्र भाव से कहा—जी हाँ, सुनकर बहुत शोक हुआ। ये त ऐसे सरकश न थे।

कुँवर साहब—यह सब आप ही के आगमन का फल है, आप अभी स्कूल के लड़के हैं। आप क्या जानें कि संसार में कैसे रहना होता है। यदि आपका असामियों के साथ ऐसा ही रहा तो फिर मैं जमींदारी कर चुका। यह

सब आपकी करनी है। मैंने इसी दरवाज़े नके पीछे-पीछे जाते थे। मानो
उलटे लटका दिया है और किसी ने चूँ तक न
कि मेरे ही आदमी पर हाथ चलायें। परीक्षा के थे; एक ओर

दुर्गानाथ (कुछ दबते हुए)—महाशय, इसमें म...सानों की हाय-हाय,
तो जब से सुना है तभी से स्वयं सोच में पड़ा हूँ। ...त् उन्हें धरती का

कुँवर साहब—आपका अपराध नहीं तो किसका है। ...ता है। यदि
इनको सर चढ़ाया, बेगार बन्द कर दी, आप ही उनके साथ ... जायगी।
बर्ताव करते हैं, उनके साथ हँसी मजाक करते हैं। ये छोटे आदमी इस... हानि
की क़दर क्या जानें। किताबी बातें स्कूलों ही के लिए हैं। दुनिया के व्य...
का क़ानून दूसरा है। अच्छा, जो हुआ सो हुआ। अब मैं चाहता हूँ कि इ...
बदमाशों को इस सरकशी का मज़ा चखाया जाय। असामियों को आपने
मालगुज़ारी की रसीदें तो नहीं दी हैं।

दुर्गानाथ (कुछ डरते हुए)—जी नहीं, रसीदें तैयार हैं, केवल आपके
दस्तख़तों की देर है।

कुँवर साहब (कुछ सन्तुष्ट होकर)—यह बहुत अच्छा हुआ। शकुन
अच्छे हैं।

अब आप इन रसीदों को चिरागअली के सिपुर्द कीजिए। इन लोगों पर
बक़ाया लगान की नालिश की जायगी, फ़सल नीलाम करा लूँगा। जब भूखों
मरेंगे तब सूझेगी। जो रुपया अब तक वसूल हो चुका है, वह बीज और ऋण
के खाते में चढ़ा लीजिए। आपको केवल यही गवाही देनी होगी कि यह
रुपया मालगुज़ारी के मद में नहीं, कर्ज़ के मद में वसूल हुआ। बस।

दुर्गानाथ चिन्तित हो गये। सोचने लगे कि क्या यहाँ भी उसी आपत्ति
का सामना करना पड़ेगा, जिससे बचने के लिए, इतने सोच-विचार के बाद,
इस शान्तिकुटीर को ग्रहण किया था? क्या जान-बूझकर इन ग़रीबों की
गर्दन पर छुरी फेरूँ, इसलिए कि मेरी नौकरी बनी रहे! नहीं यह मुझसे न
होगा। बोले—क्या मेरी शहादत बिना काम न चलेगा?

कुँवर साहब (क्रोध से)—क्या इतना कहने में भी आपको कोई उज्र है?

दुर्गानाथ (द्विविधा में पड़े हुए)—जी, यों तो मैंने आपका नमक खाया

जब लड़कों ने उसको डाँटा·लन करना मुझे उचित है, किन्तु न्यायालय
गिर पड़ा। पर बात यथार्थ है। सम्भव है कि यह कार्य मुझसे न हो सके।
कुछ प्रभाव न हुआ। कुँ दिया जाय।
वे बोले—बेईमान, आसन के ढङ्ग से)—यह काम आपको करना पड़ेगा,
बूढ़े के शरीर की गुञ्जाइश नहीं। आग आपने लगाई है, बुझावेगा कौन?
थी। समझता (दृढ़ता के साथ)—मैं झूठ कदापि नहीं बोल सकता, और न
सरकार झु शहादत दे सकता हूँ।
हमीं कुँर साहब (कोमल शब्दों में)—कृपानिधान, यह झूठ नहीं है। मैंने
है, का व्यापार नहीं किया है। मैं यह नहीं कहता कि आप रुपये का वसूल
ना अस्वीकार कर दीजिए। जब असामी ऋणी है, तो मुझे अधिकार है कि चाहे रुपया ऋण के मद में वसूल करूँ या मालगुज़ारी के मद में। यदि इतनी-सी बात को आप झूठ समझते हैं तो आपकी जबरदस्ती है। अभी आपने संसार देखा नहीं। ऐसी सच्चाई के लिए संसार में स्थान नहीं। आप मेरे यहाँ नौकरी कर रहे हैं। इस सेवक-धर्म पर विचार कीजिए। आप शिक्षित और होनहार पुरुष हैं। अभी आपको संसार में बहुत दिन तक रहना है और बहुत काम करना है, अभी से आप यह धर्म और सत्यता धारण करेंगे तो अपने जीवन में आपको आपत्ति और निराशा के सिवा और कुछ प्राप्त न होगा। सत्यप्रियता अवश्य उत्तम वस्तु है, किन्तु उसकी भी सीमा है। 'अति सर्वत्र वर्जयेत्।' अब अधिक सोच-विचार की आवश्यकता नहीं। यह अवसर ऐसा ही है।

कुँवर साहब पुराने खुर्राट थे। इस फेकनैत से युवक खिलाड़ी हार गया।

[५]

इस घटना के तीसरे दिन चाँदपार के असामियों पर बक़ाया लगान की नालिश हुई। समन आये। घर घर उदासी छा गई। समन क्या थे। देवी-देवताओं की मिन्नतें होने लगीं। स्त्रियाँ अपने घरवालों को कोसने लगीं और पुरुष अपने भाग्य को। नियत तारीख़ के दिन गाँव के गँवार कन्धे पर लोटा रखे और अँगोछे में चबेना बाँधे कचहरी को चले।

सैकड़ों स्त्रियाँ और बालक रोते हुए उनके पीछे पीछे जाते थे। मानो अब वे फिर उनसे न मिलेंगे।

पण्डित दुर्गानाथ के लिए ये तीन दिन कठिन परीक्षा के थे, एक ओर कुँवर साहब की प्रभावशालिनी बातें, दूसरी ओर किसानों की हाय हाय, परन्तु विचार-सागर में तीन दिन तक निमग्न रहने के पश्चात् उन्हें धरती का सहारा मिल गया। उनकी आत्मा ने कहा—यह पहली परीक्षा है। यदि इसमें अनुत्तीर्ण रहे तो फिर आत्मिक दुर्बलता ही हाथ रह जायगी। निदान निश्चय हो गया कि मैं अपने लाभ के लिए इतने ग़रीबों को हानि न पहुँचाऊँगा।

दस बजे दिन का समय था। न्यायालय के सामने मेला सा लगा हुआ था। जहाँ-तहाँ श्यामवस्त्राच्छादित देवताओं की पूजा हो रही थी। चाँदपार के किसान झुण्ड के झुण्ड एक पेड़ के नीचे आकर बैठे। उनके कुछ दूर पर कुँवर साहब के मुख़्तार आम, सिपाहियों और गवाहों की भीड़ थी। ये लोग अत्यन्त विनोद में थे। जिस प्रकार मछलियाँ पानी में पहुँचकर कल्लोलें करती हैं, उसी भाँति ये लोग भी आनन्द में चूर थे। कोई पान खा रहा था, कोई हलवाई के दूकान से पूरियों के पत्तल लिये चला आता था। उधर बेचारे किसान पेड़ के नीचे चुपचाप उदास बैठे थे कि आज न जाने क्या होगा, कौन आफत आयेगी, भगवान का भरोसा है। मुक़दमे की पेशी हुई। कुँवर साहब की ओर से गवाह गवाही देने लगे, ये असामी बड़े सरकश हैं। जब लगान माँगा जाता है तो लड़ाई-झगड़े पर तैयार हो जाते हैं। अबकी इन्होंने एक कौड़ी भी नहीं दी।

क़ादिर खाँ ने रोकर अपने सिर की चोट दिखाई। सबके पीछे पण्डित दुर्गानाथ की पुकार हुई।

उन्हीं के बयान पर निपटारा था। वकील साहब ने उन्हें खूब तोते की तरह पढ़ा रखा था, किन्तु उनके मुख से पहला वाक्य निकला था कि मजिस्ट्रेट ने उनकी ओर तीव्र दृष्टि से देखा। वकील साहब बग़लें झाँकने लगे। मुख़्तार आम ने उनकी ओर घूर कर देखा। अहलमद, पेशकार आदि सब के सब उनकी ओर आश्चर्य की दृष्टि से देखने लगे।

न्यायाधीश ने तीव्र स्वर में कहा— तुम जानते हो कि मजिस्ट्रेट के सामने खड़े हो ?

दुर्गानाथ (दृढतापूर्वक)—जी हाँ, खूब जानता हूँ।

न्याया०—तुम्हारे ऊपर असत्य भाषण का अभियोग लगाया जा सकता है।

दुर्गानाथ—अवश्य, यदि मेरा कथन झूठा हो।

वकील ने कहा—जान पड़ता है, किसानों के दूध, घी और भेंट आदि ने यह काया-पलट कर दी है। और न्यायाधीश की ओर सार्थक दृष्टि से देखा।

दुर्गानाथ—आपको इन वस्तुओं का अधिक तजुरबा होगा। मुझे तो अपनी रूखी रोटियाँ ही अधिक प्यारी हैं।

न्यायाधीश—तो इन असामियों ने सब रुपया बेबाक़ कर दिया है ?

दुर्गानाथ—जी हाँ, इनके जिम्मे लगान की एक कौड़ी भी बाक़ी नहीं है।

न्याया०—रसीदें क्यों नहीं दीं ?

दुर्गानाथ—मालिक की आज्ञा।

[६]

मजिस्ट्रेट ने नालिशें डिसमिस कर दीं। कुँवर साहब को ज्यों ही इस पराजय की खबर मिली, उनके कोप की मात्रा सीमा से बाहर हो गई।

उन्होंने पंडित दुर्गानाथ को सैकड़ों कुवाक्य कहे—नमकहराम, विश्वासघाती, दुष्ट। ओह, मैंने उसका कितना आदर किया, किन्तु कुत्ते की पूँछ कहीं सीधी हो सकती है! अन्त में विश्वासघात कर ही गया। यह अच्छा हुआ कि प० दुर्गानाथ मजिस्ट्रेट का फैसला सुनते ही मुख्तारआम का कुञ्जियाँ और कागजपत्र सुपुर्द कर चलते हुए। नहीं तो उन्हें इस कार्य के फल में कुछ दिन हल्दी और गुड़ पीने की आवश्यकता पड़ती।

कुँवर साहब का लेन-देन विशेष अधिक था। चाँदपार बहुत बड़ा इलाका था। वहाँ के असामियों पर कई हजार रुपये बाक़ी थे। उन्हें विश्वास हो गया कि अब रुपया डूब जायगा। वसूल की कोई आशा नहीं। इस पंडित ने असामियों को बिलकुल बिगाड़ दिया। अब उन्हें मेरा क्या डर। अपने कारिन्दों और मन्त्रियों से सम्मति ली। उन्होंने भी यही कहा—अब वसूल

होने की कोई सूरत नहीं। कागजात न्यायालय में पेश किये जायँ तो इनकम टैक्स लग जायगा। किन्तु रुपया वसूल होना कठिन है। उजुरदारियाँ होंगी। कहीं हिसाब में कोई भूल निकल आई तो रही-सही साख भी जाती रहेगी और दूसरे इलाकों का रुपया भी मारा जायगा।

दूसरे दिन कुँवर साहब पूजापाठ से निश्चिन्त हो अपने चौपाल में बैठे, तो क्या देखते हैं कि चाँदपार के असामी झुण्ड के झुण्ड चले आ रहे हैं। उन्हें यह देखकर भय हुआ कि कहीं ये सब कुछ उपद्रव न करें, किन्तु किसी के हाथ में एक छड़ी तक न थी। मलूका आगे-आगे आता था। उसने दूर ही से झुककर वन्दना की। ठाकुर साहब को ऐसा आश्चर्य हुआ, मानो वे कोई स्वप्न देख रहे हों।

[७]

मलूका ने सामने आकर विनयपूर्वक कहा—सरकार, हम लोगों से जो कुछ भूल-चूक हुई, उसे क्षमा किया जाय। हम लोग सब हजूर के चाकर हैं, सरकार ने हमको पाला-पोसा है। अब भी हमारे ऊपर यही निगाह रहे।

कुँवर साहब का उत्साह बढ़ा। समझे कि पंडित के चले जाने से इन सभों के होश ठिकाने हुए हैं। अब किसका सहारा लेंगे? उसी खुर्राट ने इन सबको बहका दिया था। कड़ककर बोले—वे तुम्हारे सहायक पंडित कहाँ गये? वे आ जाते तो जरा उनकी खबर ली जाती।

यह सुनकर मलूका की आँखों में आँसू भर आये। वह बोला—सरकार उनको कुछ न कहें। वे आदमी नहीं, देवता थे। जवानी की सौगन्ध है, जो उन्होंने आपकी कोई निन्दा की हो। वे बेचारे तो हम लोगों को बार-बार समझाते थे कि देखो, मालिक से बिगाड़ करना अच्छी बात नहीं। हमसे एक लोटा पानी के रवादार नहीं हुए। चलते चलते हम लोगों से कह गये कि मालिक का जो कुछ तुम्हारे जिम्मे निकले, चुका देना। आप हमारे मालिक हैं। हमने आपका बहुत खाया-पीया है। अब हमारी यही बिनती सरकार से है कि हमारा हिसाब-किताब देखकर जो कुछ हमारे ऊपर निकले, बताया जाय। हम एक-एक कौड़ी चुका देंगे, तब पानी पियेंगे।

कुँवर साहब सन्न हो गये। इन्हीं रुपयों के लिए कई बार खेत कटवाने

पड़े थे। कितनी बार घरों में आग लगवाई। अनेक बार मारपीट की। कैसे-कैसे दण्ड दिये। और आज ये सब आपसे आप सारा हिसाब-किताब साफ़ करने आये हैं। यह क्या जादू है!

मुख्तार आम साहब ने कागजात खोले और असामियों ने अपनी-अपनी पोटलियाँ।

जिसके जिम्मे जितना निकला, बे-कान-पूँछ हिलाये उसने सामने रख दिया। देखते देखते सामने रुपयों का ढेर लग गया। ६००० रुपया बात की बात में वसूल हो गया। किसी के जिम्मे कुछ बाक़ी न रहा। यह सत्यता और न्याय की विजय थी। कठोरता और निर्दयता से जो काम कभी न हुआ, वह धर्म और न्याय ने पूरा कर दिखाया।

जब से ये लोग मुकद्दमा जीतकर आये, तभी से उनको रुपया चुकाने की धुन सवार थी। पण्डितजी को वे यथार्थ में देवता समझते थे। रुपया चुका देने के लिए उनकी विशेष आज्ञा थी। किसी ने अन्न बेचा, किसी ने बैल, किसी ने गहने बन्धक रखे, यह सब कुछ सहन किया, परन्तु पण्डितजी की बात न टाली। कुँवर साहब के मन में पण्डितजी के प्रति जो बुरे विचार थे, वे सब मिट गये। उन्होंने सदा से कठोरता से काम लेना सीखा था। उन्हीं नियमों पर वे चलते थे। न्याय तथा सत्यता पर उनका विश्वास न था। किन्तु आज उन्हें प्रत्यक्ष देख पड़ा कि सत्यता और कोमलता में बहुत बड़ी शक्ति है।

ये आदमी मेरे हाथ से निकल गये थे। मैं उनका क्या बिगाड़ सकता था? अवश्य वह पण्डित सच्चा और धर्मात्मा पुरुष था। उसमें दूरदर्शिता न हो, कालज्ञान न हो, किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह निस्पृह और सच्चा पुरुष था।

[८]

कैसी ही अच्छी वस्तु क्यों न हो, जब तक हमको उसकी आवश्यकता नहीं होती तब तक हमारी दृष्टि में उसका गौरव नहीं होता। हरी दूब भी [illegible] समय अशर्फियों के मोल बिक जाती है। कुँवर साहब का काम एक

निस्पृह मनुष्य के बिना रुक नहीं सकता था। अतएव पण्डितजी को इस सर्वोत्तम कार्य्य की प्रशंसा कवि की कविता से अधिक न हुई।

चाँदपार के आदमियों ने तो अपने मालिक को कभी किसी प्रकार का कष्ट न पहुँचाया, किन्तु अन्य इलाकोंवाले असामी उसी पुराने ही ढङ्ग से चलते थे। उन इलाकों में रगड़-झगड़ सदैव मची रहती थी। अदालत, मार-पीट, डाँट-डपट सदा लगी रही थी। किन्तु ये सब तो जमींदारी के शृंगार हैं। बिना इन सब बातों के ज़मींदारी कैसी! क्या दिन-भर बैठे-बैठे वे मक्खियाँ मारें!

कुँवर साहब इसी प्रकार पुराने ढङ्ग से अपना प्रबन्ध सँभालते जाते हैं। कई वर्ष व्यतीत हो गये। कुँवर साहब का कारोबार दिनोंदिन चमकता ही गया। यद्यपि उन्होंने ५ लड़कियों के विवाह बड़ी धूमधाम के साथ किये, परन्तु तिस पर भी उनकी बढती में किसी प्रकार की कमी न हुई। हाँ, शारीरिक शक्तियाँ अवश्य कुछ-कुछ ढीली पड़ गईं। बड़ी भारी चिन्ता यही थी कि इस बड़ी सम्पत्ति और ऐश्वर्य का भोगनेवाला कोई उत्पन्न न हुआ; भाजे, भतीजे और नवासे इस रियासत पर दाँत लगाये हुए थे।

कुँवर साहब का मन अब इन सांसारिक झगड़ों से फिरता जाता था। आखिर यह रोना-धोना किसके लिए? अब उनके जीवन-नियम में एक परिवर्तन हुआ। द्वार पर कभी कभी साधु-सन्त धूनी रमाये हुए देख पड़ते। स्वयं भगवद्गीता और विष्णुपुराण पढते। पारलौकिक चिन्ता अब नित्य रहने लगी। परमात्मा की कृपा और साधु-सन्तों के आशीर्वाद से बुढापे में उनके एक लड़का पैदा हुआ। जीवन की आशाएँ सफल हुईं। दुर्भाग्यवश पुत्र के जन्म ही से कुँवर साहब शारीरिक व्याधियों से ग्रस्त रहने लगे। सदा वैद्यों और डाक्टरों का ताँता लगा रहता था। लेकिन दवाओं का उलटा प्रभाव पड़ता।

ज्यों-त्यों करके उन्होंने ढाई वर्ष बिताये। अन्त में उनकी शक्तियों ने जवाब दे दिया। उन्हें मालूम हो गया कि अब संसार से नाता टूट जायगा। अब चिन्ता ने और घर दबाया—यह सारा माल-असबाब, इतनी बड़ी सम्पत्ति किस पर छोड़ जाऊँ! मन की इच्छाएँ मन ही में रह गईं। लड़के का विवाह भी न देख सका। उसकी तोतली बातें सुनने का भी सौभाग्य न हुआ। हाय,

अब इस कलेजे के टुकडे को किसे सौंपूँ, जो इसे अपना पुत्र समझे। लड़के की माँ स्त्री-जाति, न कुछ जाने न समझे। उससे कारबार सँभलना कठिन है। मुख्तारआम, गुमाश्ते, कारिन्दे कितने हैं, परन्तु सब के-सब स्वार्थी, विश्वासघाती। एक भी ऐसा पुरुष नहीं जिस पर मेरा विश्वास जमे। कोर्ट आफ़ वार्ड्स के सुपुर्द करूँ तो वहाँ भी ये ही सब आपत्तियाँ। कोई इधर दबायेगा, कोई उधर। अनाथ बालक को कौन पूछेगा? हाय, मैंने आदमी नहीं पहचाना। मुझे हीरा मिल गया था, मैंने उसे ठीकरा समझा! कैसा सच्चा, कैसा वीर, दृढप्रतिज्ञ पुरुष था। यदि वह कहीं मिल जावे तो इस अनाथ बालक के दिन फिर जायँ। उसके हृदय में करुणा है, दया है। वह एक अनाथ बालक पर तरस खायगा। हा! क्या मुझे उसके दर्शन मिलेंगे! मैं उस देवता का चरण धोकर माथे पर चटाता। आँसुओं से उनके चरण धोता। वही यदि हाथ लगाये तो यह मेरी डूबती हुई नाव पार लगे।

[६]

ठाकुर साहब की दशा दिन पर दिन बिगडती गई। अब अन्तकाल आ पहुँचा।

उन्हें पण्डित दुर्गानाथ की रट लगी हुई थी। बच्चे का मुँह देखते और कलेजे से एक आह निकल जाती। बार-बार पछताते और हाथ मलते। हाय! उस देवता को कहाँ पाऊँ। जो कोई उसके दर्शन करा दे, आधी जायदाद उसके न्योछावर कर दूँ। प्यारे पण्डित मेरे अपराध क्षमा करो। मैं अन्धा था, अज्ञानी था। अब मेरी बाँह पकडो। मुझे डूबने से बचाओ। इस अनाथ बालक पर तरस खाओ। हितार्थी और सम्बन्धियों का समूह सामने खडा था। कुँवर साहब ने उसकी ओर अधखुली आँखों से देखा। सच्चा हितैषी कहीं देख न पड़ा। सबके चेहरे पर स्वार्थ की झलक थी। निराशा से आँखें मूँद लीं। उनकी स्त्री फूट फूटकर रो रही थी। निदान उसे लज्जा त्यागनी पडी। वह रोती हुई पास जाकर बोली—प्राणनाथ, मुझे और इस असहाय बालक को किस पर छोडे जाते हो? कुँवर साहब ने धीरे से कहा—पण्डित दुर्गानाथ पर। वे जल्द आवेंगे। उनसे कह देना कि मैंने सब कुछ उनको भेंट कर दिया। यह मेरी अन्तिम वसीयत है।

प्रश्नावली

(१) दुर्गानाथ के चरित्र की आलोचना कीजिए और उस पर अपनी निष्पक्ष सम्मति प्रकट कीजिए।

(२) क. कुँवर साहब ने किसानों के साथ कैसा व्यवहार किया और उसका क्या परिणाम हुआ।

ख. दुर्गानाथ की सत्यवादिता का असामियों पर क्या प्रभाव पड़ा?

ग. कुँवर साहब को दुर्गानाथ की याद कब आई और क्यों?

(३) निम्नलिखित अवतरणों का अर्थ प्रसंग के साथ लिखिए—

अ. इस दीनता के बीच में यह ऐश्वर्य उनके लिए याद से कोसों दूर था।

ब. बूढ़े के शरीर में अब रक्त तो वैसा न रहा था, पर कुछ गर्मी अवश्य थी।

स. किताबी बातें स्कूल ही के लिए हैं, दुनिया के व्यवहार का कानून दूसरा है।

द. सत्यप्रियता अवश्य उत्तम वस्तु है, पर उसकी भी सीमा है।

(४) निम्नलिखित मुहावरों का अपने वाक्यों में प्रयोग कीजिए —

बगलें झाँकना, कुत्ते की पूँछ का सीधा न होना, रुपए का छूट जाना, म[illegible] आती रहना, होश ठिकाने होना, डूबती नाव पार लगना।

(५) इन कथनों की आलोचना कीजिए —

अ. कैसी ही अच्छी वस्तु क्यों न हो, जब तक हमको उसकी आवश्यकता नहीं होती, तब तक हमारी दृष्टि में उसका गौरव नहीं होता।

ब. सच्चाई का रुपये से कोई सम्बन्ध नहीं।

(६) शहादत, हलीयन, गुनाह, [illegible] सरकना के अर्थ लिखिए।

मुनमुन

श्री भारतीय एम० ए०

(सं० १९५१)

आपका जन्म संवत् १९५१ है। आपका पूरा नाम सत्यजीवन वर्मा एम० ए० है। आजकल आप प्रयाग में रहते हैं। आप हिन्दुस्तानी एकेडमी प्रयाग के सुपरिंटेंडेंट हैं। आप लेखक-संघ प्रयाग के संयोजक तथा संघ के मुखपत्र 'लेखक' के सम्पादक हैं।

आप निरभिमान, उदार और सरल प्रकृति के हैं। आप हिन्दी के गद्य-पद्य के सुयोग्य लेखक हैं। हिन्दी के प्राचीन साहित्य में भी आपकी पूर्ण पहुँच है। आप कहानी और प्रहसन लिखने में सिद्धहस्त हैं।

आपकी प्रमुख रचनाएँ ये हैं—

गल्प-संग्रह—मिस ३५ का पति-निर्वाचन, मुनमुन, आख्यानत्रयी, गृहिणी, भूकम्प।

अनुवाद—स्वप्नवासवत्ता, दर्पण, प्रायश्चित्त, प्रेम की पराकाष्ठा।

'मुनमुन! मुनमुन!'—तुतली भाषा में पुकारता हुआ वह चार बरस का लड़का बकरी के काले कनकटे बच्चे के पीछे दौड़ रहा था। मुनमुन उमंग में कूदता, उछलता, कभी लड़के की ओर देखता, पास आता, फिर छलाँग मारकर चक्कर काटने लगता। लड़का उसे पुचकारकर, हाथ की मिठाई दिखाकर, ललचाकर अपने पास बुलाना चाहता। उसे पकड़कर गले लगाने की उसको बड़ी अभिलाषा हो रही थी, परन्तु वह नटखट मुनमुन—लड़के के बहलावे में नहीं आना चाहता था। ज्यों-ज्यों वह मुण्डा लड़का अपनी हल्दी में रँगी धोती सँभालता हुआ उसके पीछे दौड़ता, त्यों-त्यों वह मुनमुन और मैदान दिखाता था। इसी बीच लड़के के और साथी आ पहुँचे।

साथियों ने लड़के को घेर लिया। सभी उसे आदर और सद्भाव से देखने लगे, जैसे वही अकेला उन सबके बीच भाग्यवान् हो! नंगे-धड़ंगे, धूलि-धूसरित एक लड़के ने उसकी ओर ईर्ष्याभरी, ललचाई आँखों से देखकर कहा—'माधो! तुम्हें तो बड़ी अच्छी-अच्छी चिजें मिली हैं, जी!' और वह साथियों की ओर इसके समर्थन की आशा से देखने लगा। माधो ने

हृदय पर गर्व का प्रभाव अवश्य हो उठा। उसने अभिमान से और मुँह बिचकाकर, सिर हिलाकर कहा, 'हमारा मुंडन नहीं हुआ है ? यह देखो यह पीली धोती ! यह मिठाई ! और नहीं तो क्या। तुम्हारा कहीं मुंडन हुआ है ? तुम्हारा होगा तो तुम्हें भी मिलेगा।' प्रश्नकर्त्ता अपने भाग्य पर अवश्य दुखी हो उठा होगा, इसी से वह चुप हो गया, पर उसका एक साथी अनुभवी कूँच में था। उसने कहा, 'क्यों नहीं और जब कूँच से कान छेदा गया होगा, तब न मालूम पड़ा होगा मिठाई और धोती का मतलब ?

उसने उस नवमुण्डित लड़के के कान की बाली की ओर इशारा करके कहा—कुछ व्यंग्य से, कुछ अनुभवी के अभिमान से।

सब लड़के निकट पहुँचकर माधो के कानों की परीक्षा करने लगे। कानों की लुरकी में पीतल की छोटी बाली छेदकर पहनाई गई थी। छेदन-क्रिया अभी दो ही दिन पूर्व हुई थी, इसी से कान सूजे हुए थे, और बालियों की जड़ में रुधिर के सूखे हुए चिन्ह वर्तमान थे। परीक्षा करते-करते एक चिल-बिले बालक ने उसे छू दिया। माधो 'सी' करके हट गया। उसकी आँखें सजल हो गईं। लड़का अपनी धृष्टता पर लज्जित और भयभीत हो गया। उसके साथी भी आशंकित हो चुप हो गये। सौभाग्यशाली-सम्पन्न घर के लड़के की पीड़ा का अनुभव उसके गरीब साथी अवश्य करते हैं। माधो चुप-चाप अपने कानों की बात सोच रहा था और उनकी पीड़ा की मात्रा से मुन-मुन के कष्ट की मात्रा का अन्दाज लगाता था।

वह सोचता था, 'मेरे कान तो जरा छेदे गये हैं; पर उस बेचारे का तो एक कान थोड़ा-सा काट ही लिया गया। कान काटने पर, कान छेदने से दर्द जरूर कुछ अधिक होता होगा।' यह उसके बाल-मस्तिष्क की तर्कशक्ति ने निश्चय किया। वह मुनमुन के प्रति स्नेह और सहानुभूति के भाव से भर गया। उसे इच्छा हुई, मुनमुन को पकड़कर प्यार करने और उसके कान की परीक्षा करने की। मुनमुन अपनी माँ के थन में मुँह मारता हुआ, अपनी छोटी दुम हिलाता हुआ, तन्मयता से दूध पी रहा था। उसकी माँ जुगाली करती हुई, कभी-कभी रुककर प्रेम और सन्तोष भरी दृष्टि से अपने बच्चे को देख लेती—सूँघ लेती थी। माधो ने सोचा—

'इस समय मुनमुन को पकड़ने का अच्छा अवसर है !'

उसने अपनी इच्छा अपने साथियों से प्रकट की। बाल-सेना तुरत इस काम के लिए तैयार हो गई। घेरा डाल दिया गया। मुनमुन गिरफ्तार हो गया। फरार असामी पकड़ लिया गया। किसी ने अगली टाँगें पकड़ीं, किसी ने पिछली। माधो ने उसके गले में अपनी छोटी बाँहें डाल दीं। सब उसे लेकर आँगन में सूखने के लिए डाले गये पुआल के 'पैर' पर पहुँचे। बैठकर सब मुनमुन का आदर-सत्कार करने लगे। मुनमुन की माँ बच्चों को सचेत करने के लिए कभी-कभी उनकी ओर देखकर 'में-में' कर देती, मानो वह कहना चाहती हो, 'बच्चो, देखो मुनमुन का कान न दुखाना।'

मुनमुन अपनी आव भगत और लाड प्यार से जैसे ऊब रहा था। मनुष्यों के प्यार की निस्सारता जैसे वह अजपुत्र खूब समझता हो। वह अच्छी तरह कसकर पकड़े जाने पर भी अवसर पाकर कूद फाँद मचाकर निकल भागने का प्रयत्न करता, विवशता में 'मे-मे' कर माँ को पुकारता, लाचार हो आँखें मूँद कर चुप हो जाता। लड़के उसे कुछ खिलाने की नीयत से उसका मुँह खोलना चाहते, वह दाँत बैठा लेता। वे उसे पुचकारते, वह अनसुनी कर देता। वे पीठ पर हाथ फेरते, वह हाथ नहीं रखने देता। पता नहीं, उस छोटे बकरे के अल्प जीवन की किस घटना ने उसे मनुष्यों से शंकित कर दिया था।

संसार में अज्ञान अथवा अभ्यास ही भय की गुरुता की उपेक्षा वा अपेक्षा का कारण होता है। मुनमुन ने धीरे धीरे अभ्यास से आशंका के महत्त्व की उपेक्षणीय वस्तु समझना सीखा। अब वह अभ्यस्त हो गया था, बच्चों के उपद्रवों का सामना करने में—धीरे धीरे उसके जीवन में नित्य ये उपद्रव इतने बार घटने लगे कि वह उनके प्रति एक प्रकार की ममता का अनुभव करने लगा। उसे भी अच्छा लगना, उन बच्चों का उसे दौड़ाना, दौड़ाकर पकड़ना, पकड़कर उसकी साँसत करना, उसकी पीठ पर चढ़ना, उसके कान पकड़कर उसे खेत की ओर ले जाना, मुँह खोलकर उसमें बल पूर्वक खिलाने की चीजें ठूँस देना। बच्चों के साथ इस प्रकार उसके पूरे दो वर्ष बीते। अब वह उन्हें एक एक कर पहचानने भी लगा। उसके अज मस्तिष्क

में बच्चों के व्यक्तित्व की कल्पना निर्गुण रूप में न रहकर सगुण रूप में रहने लगी। इसका प्रमाण उसका आचरण था। वह उस बाल-समुदाय में से माधो को तुरन्त पहचान लेता, उसके पास बिना बुलाये ही—उपेक्षा करने पर भी—बार बार हटाते जाने पर भी- जा पहुँचता था। अन्य उसके साथियों में से वह उनके गुण और अच्छे-बुरे आचरणों के अनुसार, उसी मात्रा में उनसे स्नेह वा निलिप्सा प्रदर्शन करता। इसी से हम कहते हैं कि वह बकरी का बच्चा भी मनुष्यों की परख कर सकता था!

माधो और मुनमुन की मैत्री, अब कुछ-कुछ आध्यात्मिक स्नेह की सीमा तक पहुँच रही थी, इसे कहते हमें संकोच नहीं होता। बकरे अध्यात्म या उसके किसी रूप का साक्षात् करने के अधिकारी हैं या नहीं—यह प्रश्न ही दूसरा है, परन्तु हमारे देखने में वह मुनमुन अपने साथी माधव के हृदय के भावों को समझने में असमर्थ होता था, समझने की चेष्टा करता था और उनके प्रति सहानुभूति रखने लगा था। लड़का जब माता या पिता की डाट खाकर अपनी किताबें ले एक कोने में पहुँच दुखी होकर उन्हें उलटकर उनकी आवृत्ति करने बैठता, तो उस समय मुनमुन उसके पास पहुँच उसकी पीठ से अपनी पीठ रगड़ उसे मनाता और अवसर पाकर उसकी पुस्तक हड़प करने की चेष्टा करता। माधो के छीनने पर वह इस प्रकार भाव-भरी आँखों से उसकी ओर देखता, मानो कह रहा हो, 'माधो, इन्हें मुझे खा जाने दो, ये मेरे ही योग्य हैं। इन सफेद—नीरस पन्नों पर रँगे हुए चिह्नों में तुम्हारे लिए देखने की कोई वस्तु नहीं है। इसका उचित स्थान मेरा उदर ही है। चलो हम दोनों कहीं दूर—इन बखेड़ों से दूर—किसी ऐसे स्थान में चलें, जहाँ केवल हम हों, तुम हो। तुम मेरी पीठ पर चढ़कर मुझे दौड़ाना, मैं तुम्हें प्रसन्न करने के हेतु छलाँग भरूँगा। तुम मुझे हरी-हरी घास खिलाना। मैं तुम्हारी गोद में मुँह डालकर आँखें मूँद लूँगा। तुम मेरी पीठ पर सिर टेककर सुख से विश्राम करना।' मुनमुन की बातें हम समझें या न समझें (हम समझदार ठहरे) पर माधो के लिए उसकी मूकवाणी हृदय की भाषा थी!

जब माता-पिता के दंड को भूलकर मुनमुन के साथ घर से निकल जाता।

फिर दिन भर वह बाग बाग, खेत-खेत उसे लिए हुए चक्कर काटता। मुनमुन तो हरी-हरी घास देख खाने से न चूकता, पर माधो का जैसे मुनमुन को भर-पेट खिलाने ही में पेट भर जाता था। उसकी भूख प्यास उस काले कनकटे मुनमुन के रहते उसे सताने का साहस न कर पाती थी।

मुनमुन की आयु अब महीनों के माप से बढ़कर वर्षों में आँकी जाने लगी। माधो सात साल का हुआ। मुनमुन ३६ मास का ही था, पर वह माधो से अधिक बलिष्ठ, चतुर और फुर्तीला था। कभी-कभी जब दोनों में रस्साकशी होती, तो मुनमुन ही माधो को घसीट ले जाता, पर यह सब केवल विनोद या खींचा तानी के लिए ही होता था। यों कभी माधो को मुनमुन ने दिक नहीं किया। वह उसके पीछे फिरता, वह उसके पीछे लगा रहता। दोनों ऐसे हिले-मिले थे, मानो बहुत पहिले के परिचित हों। मुनमुन को देखकर जब माधो के साथी लड़के उसकी प्रशंसा करते, 'अजी, इसके सींग कैसे सुन्दर हैं! जरा-सा तेल लगा दिया करो माधो। इसके बाल कैसे चमकते हैं, जी! हाथ फेरने में बड़ा अच्छा लगता है। अजी खूब तैयार है माधो तुम्हारा मुनमुन!' और वे माधो की ओर अपनी सौन्दर्य प्रियता की अनुभूति से प्रेरित होकर इस आशा से देखते, जैसे माधो यदि उन्हें ऐसा कहने और अपने मुनमुन को प्यार करनेसे रोकेगा नहीं,तो वे अपने को धन्य समझेंगे। माधो अपने मुनमुन की प्रशंसा सुनता, तो उसके हृदय में मुनमुन के प्रति स्नेह की आग प्रबल हो उठती। उसके जी में एक अज्ञात गुदगुदी होती। वह लपककर मुनमुन को गले लगाकर चूमने और प्यार करने लगता। ऐसे अवसर पर उसके बाल साथी मुनमुन को सुहलाने की अपनी साध पूरी करने से नहीं चूकते।

नैसर्गिक सौन्दर्यप्रियता और निस्स्वार्थ प्रेम के ये भाव बच्चों को अपने को भूल जाने में सहायक होते। वे तन्मय होकर माधो के मुनमुन की सेवा-शुश्रूषा में लग जाते। उनका मुनमुन के प्रति स्नेह और सहानुभूति 'भक्तों' की भक्ति से कम न थी।

मुनमुन पर सभी छोटे बड़े की आँखें लगी थीं। अपनी-अपनी भावना के [illegible]सार सब उसे अपनी आँखों से देखते, परन्तु मुनमुन ने उसने कभी इसकी [illegible] भी नहीं की, वह मग्न रहता अपने चरने-फिरने और कुलेल करने में।

किसी की दृष्टि और कुदृष्टि की आशंका जैसे थी ही नहीं। माधो के रहते ने कभी इस विषय पर सोचने की आवश्यकता ही नहीं समझी।

मुनमुन के जन्म के पश्चात् उसकी माता बकरी ने कम से-कम एक न बच्चे दिये होंगे। उसकी माता की कई पीढियों ने इसी प्रकार बच्चे दूध देकर अनेक वर्षों से स्वामी के कुल की सेवा में अपने कुल की दा बनाये रखी थी। मुनमुन की माँ अपने उदर के अनेक शिशुओं में म मुनमुन ही को देखकर मानो उसका साक्षात् अनुभव कर सकी थी कि के बच्चे भी इतने बड़े हो सकते थे। नहीं तो उसने यही समझा था कि न में उसका धर्म केवल बच्चे देना, दूध देना और इसी में सफल-मनोरथ के निमित्त—खाना पीना और निश्चिन्त जुगाली करना है।

मुनमुन को अब माता से उतना सरोकार न रहता और इसी से कदाचित् के प्रति उसका उतना स्नेह नहीं दिखाई पड़ता, जितना कि जन्म के बाद महीनों तक था, परन्तु उस बकरी के हृदय में जैसे अब भी मुनमुन के कोई भाव छिपा था। वह उसे माधो के साथ खेलते या धूप में चारपाई लेटे देख जैसे सन्तोष की आँखों से दोनों को निहारकर आशीर्वाद देती। मुनमुन कभी-कभी उसके पास पहुँचकर उसकी नाँद से कुछ भूसी-कर खा लेता। वह छीन-झपटकर खाने में अपने धर्म की मर्यादा समझ, उसकी माँ उसकी सीनाजोरी पर उदासीनता प्रकट करती हुई सन्तोष जुगाली करना ही अपना कर्तव्य समझती थी।

मुनमुन की खातिर कभी-कभी माधो भी उसकी माँ की देख-भाल किया था। उसकी इच्छा होती कि फिर मुनमुन अपने बचपन की भाँति अपनी का दूध पीता। कभी-कभी वह उसे पकड़कर उसका मुँह उसके थन तक देता; पर मुनमुन उसे अपने छोटे भाइयों का अधिकार समझ उससे फेर लेता। माधो का मानवी हृदय उस पशु के इस गुप्त भाव का कदा- अनुमान नहीं कर पाता था। सम्भव है, कभी समझ में आवे, परन्तु समय इसे वह मुनमुन की धृष्टता और अपने स्वामी की इच्छा की अव- ना समझता था और इसी आधार पर वह अपनी मनोवृत्ति के अनुसार मुन को दण्ड देता।

उसका दण्ड मुनमुन प्रसन्नता से स्वीकार करता और दण्ड ही क्या होता—छोटे-छोटे हाथों के दो-एक थप्पड़ या पीठ पर दो-एक घूँसे। मुनमुन इन दण्ड प्रहारों पर केवल अपना 'सहर्ष स्वीकार' प्रदर्शन करता और उसके पश्चात् मानो उसके प्रायश्चित्त मे अपना शरीर हिलाकर वह गर्द झाड़ देता या सिर हिलाकर अपने सींग नीचे कर देता। फिर दण्डित और दण्डविधायक दोनों मित्र की भाँति किसी ओर विचरण करने चल देते।

इस प्रकार कुछ दिन और बीते। माधो अब आठ बरस का हो गया। उसका मुनमुन चार साल का पट्ठा हुआ। दोनों देखने में सुन्दर लगते। माधो को देखकर उसका पिता प्रसन्न होता। माँ अपने को धन्य समझती। दोनों के मन में आशा का दीपक और भी प्रकाशमान होता हुआ जा पड़ता। मुनमुन की बूढ़ी माँ अब और भी बूढ़ी हो चली थी। अब वह दूध न देती, उसके बच्चे न होते। यदि बकरी की माँ को कोई अधिकार अपने बच्चों पर रखने का है तो उसी अधिकार से वह भी अपने मुनमुन को देखती, उसे देखकर सुखी होती थी। वह कुछ सोचती थी या नहीं, पर उसकी मुद्रा से यह भाव प्रकट हो सकता था कि वह अपने बुढ़ापे में अपनी आँखों के सामने अपनी एक सन्तान को देखकर सुखी थी और यदि पशु को भी परमात्मा का स्मरण करने का अधिकार है, तो वह निश्चय उस समय परमात्मा का स्मरण करती थी, जब उसे और लोग पुआल पर बैठा आँखें मूँदे जुगाली करते हुए देखते थे। उसके परमात्मा का क्या रूप था, हम नहीं कह सकते; परन्तु यह निश्चय है, उस पशु की कल्पना में परमात्मा का आकार, मनुष्य सा कदापि न होगा। क्यों? इसका उत्तर वह बकरी या उसकी सन्तान दे सकेगी।

माधो मुनमुन को गाड़ी मे जोतने का स्वप्न देखने लगा। वह सोचता था, यदि एक गाड़ी हो जाय तो मैं भी मुनमुन को जोतकर सैर करने निकलूँ। उस समय उसके अन्य साथी उसकी ओर किन आँखों से देखेंगे—इसकी कल्पना वह बालक कर लेता था, और उसी कल्पना के परिणाम-स्वरूप अपने हृदय मे आई हुई प्रसन्नता से विह्वल होकर वह पिता से गाड़ी बनवा देने का आग्रह करता। नित्य अपने प्रस्ताव को कार्यरूप मे परिणत होते देखने की कामना करता। पिता नहीं, नहीं करता, पर मुनमुन को वह ऐसे अवसर पर

ऐसी आँखों से देखता, जैसे यह सोचता हो कि 'यही इस झगड़े का घर है।'

मुनमुन ने मनुष्यों की भाषा सीखने या समझने का प्रयत्न नहीं किया था। यद्यपि वह इन्हीं के बीच रहता आया है, परन्तु वह उनकी छिपी हुई हृदय की भावनाएँ जैसे भाँपने के योग्य हो गया था। इधर कुछ दिनों से उसे ऐसा जान पड़ा, मानों उसके प्रति लोगों का ध्यान अधिक आकृष्ट हो रहा है। उसे देखकर लोग आपस में कुछ कहते सुनते थे। कभी-कभी उसे उठाकर उसके बोझ का जैसे अन्दाज भी लोग लगाते थे।

मालिक के घर भी कुछ ऐसी तैयारियाँ या नित्य के साधारण वातावरण में परिवर्तन होते दिखाई देने लगे, जिसे देख मुनमुन को अपने बचपन के किसी कटु अनुभव की स्मृति कष्ट देने लगती। स्मृति बहुत धुँधली और मन्द हो चुकी थी। उसकी पीड़ा की मात्रा यद्यपि अधिक न था, पर उसके कारण उसे हृदय में एक ऐसी आशंका का उदय होते जान पड़ा, जिसे मुनमुन का अज-मस्तिष्क सुलझा न सका। वह इसी हेतु कुछ चौंका हुआ, कुछ आशंकित-सा रहने लगा। माधो यह बात न समझ सका। वह कैसे समझता, कान तो एक ही बार छेदा जाता है, फिर क्या डर था! माधो ने अपने 'मुण्डन' में मुनमुन के सिर में सिन्दूर लगाते उसके गले में माला डालते देखा था। उसे प्रसन्नता हो रही थी कि उसके 'मुण्डन' पर फिर उसके मुनमुन का शृंगार होगा—उसकी पूजा होगी। वह इस पर प्रसन्न था कि उसका मुनमुन इस बार बड़ा-सा सुन्दर-सा है। अब की बार वह स्वयं भी शृंगार करेगा और उसे सजाकर वह अपने साथियों को गर्व से दिखाएगा।

⁂ ⁂ ⁂

वैसे क्या हुआ—हमने उस बलि विधान को अपनी आँखों देखा नहीं, और देखकर भी हम देखने में समर्थ न होते। पर, दूसरे दिन प्रातःकाल हमने माधो को मुनमुन की खोज में पागल की भाँति इधर-उधर घर के कोने-कोने में झाँकते देखा। द्वार पर नीम की शीतल छाया में भैरवी बज रही थी।

घर में स्त्रियाँ मंगल-गान कर रही थीं। बाहर बिरादरी के भोज की तैयारी में नौकर-चाकर व्यस्त थे। जानकार चतुर रसोइये, अपनी पाक-कुशलता की शेख़ी हाँककर, अच्छे अच्छे व्यंजन बनाने का दावा कर रहे थे। छूकर

से छाये हुए, टट्टियों से घिरे चौपाल के एक कोने में मुंशीजी चिलम फूँकते हुए चूल्हे पर चढ़े 'देग' की देख रेख में लगे थे। इधर कम लोग आते थे। माधो भी उधर आकर अपने मुनमुन की खोज नहीं पा सकता था। वह क्या समझता कि उसका मुनमुन, इस समय, देवी के चरणों में गति पाकर अपने शरीर का, इस महोत्सव के अवसर पर आए हुए अतिथियों के सम्मुख 'प्रसाद' रूप में अर्पण करने के निमित्त, 'देग' में छिपा है।

लोग अपनी-अपनी धुन में मस्त थे। माधो अपने मुनमुन को खोज में परेशान था। वह किससे पूछता? मुनमुन का पता उसे कौन बतलाता—क्या उसके घरवाले या उस समय वहाँ उपस्थित लोग उसे बतलाते? यदि बतलाते तो क्या बतलाते? बतलाकर क्या समझाते? माधो विक्षिप्त की भाँति भटकता हुआ बकरी के पास चला। मुनमुन की अनुपस्थिति में उसे ऐसा जान पड़ा मानो उसकी माँ ही उसे अपने बच्चे का पता बतला सकती है। वह बाड़े में बँधे पशुओं के बीच से बचकर कोने में बँधी बकरी के पास पहुँचा। बकरी निश्चिन्त बैठी 'पागुर' कर रही थी।

उसके गले में बाँहें डाल, उसकी रूखी भूरी पीठ पर सिर छिपाकर माधो सिसक-सिसक रोने लगा। उसकी अन्तर्वेदना की करुण पुकार किसने सुन पाई? यदि कोई सुन सका होगा, तो वही बकरी या मनुष्यों का वह परमात्मा जिसे वे सर्वत्र वर्तमान समझते हैं।

रोते रोते माधो की हिचकियाँ बँध रही थीं। आँसुओं के कारण भीगी पीठ की आर्द्रता का अनुभव कर वह बकरी कभी-कभी प्रश्नात्मक नेत्रों से माधो की ओर देखती। माधो उसकी आँखों से आँखें मिलते ही दुःख में विह्वल हो उठता। वह मुनमुन के बिछोह से विकल हो तड़प-तड़पकर रोने लगता। उसके घर का वातावरण उत्सव के चहल-पहल और गाने-बजाने से मुखरित हो रहा था। वायु मण्डल धूप और सुगन्ध से लदा था। एक ओर हवन के द्रव्य और आज्य की धूमराशि—दूसरी ओर भोज के व्यंजनों की सोंधी सुगन्ध! इन सबसे अप्रभावित वह बकरी बैठी जुगाली कर रही थी और माधो मुनमुन के लिए भूमि पर पड़ा तड़प रहा था! एक ने मानो [illegible] समान की हृदयहीनता का आलोचन अनुभव कर दार्शनिक की

उदासीनता प्राप्त की थी—दूसरा मानव-जाति की सभ्यता की वेदी के सोपान की ओर घसीटे जाने पर, बकरी के बच्चे की भाँति छटपटा रहा था।

प्रश्नावली

(१) 'मनुष्य के लाड-प्यार की निस्सारता जैसे वह अज पुत्र खूब समझता है', मुनमुन के पास इस निस्सारता का क्या प्रमाण था ?

(२) 'पता नहीं उस छोटे से बकरे के ग्राम्य जीवन की किस घटना ने उसे मनुष्यों से सशंकित कर दिया था' वह कौन-सी घटना थी ?

(३) इन अवतरणों के अर्थ प्रसङ्ग के साथ स्पष्ट करो—

क 'संसार में अज्ञान का अभ्यास ही मद की तुलना की उपेक्षा का कारण है।'

ख 'उसके अज-मस्तिष्क में बच्चों के व्यक्तित्व की कल्पना निर्गुण रूप में न रहकर सगुण रूप में रहने लगी।'

ग 'परन्तु यह निश्चय है उस पशु की कल्पना में परमात्मा का आकार मनुष्य-सा कदापि न होगा।' क्यों ?

घ 'मालिक के घर भी कुछ ऐसी तैयारियाँ या नित्य के साधारण वातावरण में परिवर्तन होते दिखाई देने लगे, जिसे देख मुनमुन को अपने बचपन के किसी कटु अनुभव की स्मृति कष्ट देने लगी।'

(४) नैसर्गिक सौन्दर्य-प्रियता, दार्शनिक की उदासीनता से क्या समझते हो ?

(५) मुनमुन की जीवन-कथा संक्षिप्त रूप में लिखो।

(६) इस कहानी में समाज पर किस प्रकार का व्यंग है ?

(७) माधो और मुनमुन के स्नेह का क्रमिक विकास कैसे हुआ ?

परिवर्तन

श्री वीरेश्वरसिंह बी० ए०

कुटी के लिए एक छोटा सा दीपक काफी है, और मनुष्य-जीवन के लिए एक छोटी-सी बात—परिवर्तन के प्रकाश में अन्धकार के अपरचित मुस्कराते हैं, आँखे मिलती हैं, बातें खुलती हैं और एक महान् क्षण में संसार बदल जाता है एक ज़रा-सी नज़र, एक छोटी-सी आह, एक उड़ती हुई मुस्कान—दुनिया की इन्हीं छोटी-छोटी बातों में तो उसकी आत्मिक शक्ति भरी है—कलेजे में छूरी-सी तैर जाती है, आत्मा कसक उठती है, दिल के साथ ज़मीन-आसमान एक नये रङ्ग में खिल उठते हैं और हम आश्चर्य से देखते हैं—अरे, यह क्या !

आज रामू के हृदय को कोई देख सकता तो वह कह उठता—'अरे यह क्या !' वह लबालब हो रहा था और भरे हुए मानस में उसकी आत्मा ऊपर उठकर खिल रही थी।

रामू फेरी लगाने निकला था। इस जीवन स्वप्न में, मिट्टी की पृथ्वी पर, मोम के खिलौने बनाना और बेचना कोई अनुपयुक्त रोज़गार नहीं, और राम यही करता था। वह मोम की चिड़िया बनाता, उनमें लाल, पीला, हरा रङ्ग देता, और उन्हें एक डोरे के सहारे अपनी लकड़ी से झुला देता। वह रोज सुबह निकल जाता और शाम होते-होते कुछ-न-कुछ कमा लाता। रङ्ग-बिरङ्गी झूमती हुई चिड़ियों की पङ्क्ति में बालकों के मन उड़कर लटक रहते, और रामू ललचाती हुई आवाज में गाता—

'लल्ला की चिरैया है—भय्या की चिरैया है।
जिसके होवेंगे खेलैया, वही लेवेगा चिरैया,
वाह, वाह री चिरैया।'

चलते-चलते राम ने आवाज लगाई—'लला की चिरैया है, भय्या की चिरैया है।'—उमङ्गों भरी वेधती आवाज गाँव के घरों में गूँज उठी। बच्चे [illegible]। कितने ही घरों में 'अम्मा' ऊँ ऊँ और रोना-ठुमकना मच गया।

रामू कहता जा रहा था—'जिसके होवेंगे खेलैया, वही लेवेगा चिरैया, वाह, वाह री चिरैया।'

यह चोट थी। बिना बच्चेवालों ने एक गहरी साँस भरी, और माताओं के अन्तर में, एक चुपके से, एक अनिर्वचनीय सुख दिप उठा।

रामू चला जा रहा था। खरीदनेवाले उसे खुद बुलाते, मोल-भाव करते, और लेते या उसे लौटा देते। कितने ही बालकों ने उसे बुलाया, कितनों ही ने उससे मोल-भाव किया। वह एक चिड़िया दो पैसे में बेचता था, इससे कम में वह किसी को न देता था। जो ले सकते वे लेते, जो न ले सकते वे मन मारकर रह जाते। एकाएक किसी ने रामू को पुकारा—'ओ, चिरैया-वाले।'—रामू लौट पड़ा।

एक द्वार पर एक बूढ़ा और उसी के पास एक पाँच साल की बालिका, उसी से लगी हुई, आधी उस पर लदी हुई बैठी थी। रामू के पहुँचते ही वह खिल उठी। वह एक चिड़िया जरूर लेगी। भुनभुनाकर उसने कहा—'नानी, वही वह लाल लाल सी।'

'अच्छा ठहर तो'—वृद्धा बोली—'भय्या कैसे-कैसे दिये चिरैया?'—वृद्धा ने रामू से पूछा।

'दो-दो पैसे माई!'—रामू बोला।

'ठीक बतलाओ तो ले लूँ एक इस बच्ची के लिए।'—वृद्धा ने कहा। बालिका का हृदय धुप् धुप् कर रहा था। मन ही मन वह मना रही थी—'हे राम यह चिरैयावाला मान जाय।' आशा, सन्देह, हर्ष, निराशा, उसके हृदय में कुछ चुभे से रहे थे। अभिलाषा तड़प रही थी, उम्मीद चकोर-सी आँख लगाये बैठी थी। सौदागर क्या करेगा? वह क्या करनेवाला है! यह उसके [illegible] भाग्य का प्रश्न था! उसके कान सुन रहे थे, जब रामू ने कहा—'नहीं माई, कम ज्यादा न होगा, दो-दो पैसे तो सभी को देता हूँ।'

वृद्धा ने कहा—'अच्छा, तो तुम्हारी मर्जी दो-दो पैसे तो बहुत हैं।'

सौदागर चुप रहा। लड़की का चेहरा उतर गया—उसका दिल टूट गया। उसकी आशा कहाँ थी? चिड़िया के साथ खेलने, उसे उड़ाते हुए देखने और हँसने की खुशियाँ कहाँ थीं।

'नानी, दो पैसे क्या बहुत हैं ?—उसकी आत्मा चीख़ रही थी।

'सौदागर, तुझे एक पैसा कम करना भी क्या बहुत है ?' उसकी आकांक्षा बिलख रही थी। बालिका की बड़ी-बड़ी आँखें उस सौदागर को, उन चिड़ियों को अपनी ओर खींच रही थीं। उसमें निराशा-आशा गूँगी-सी मुँह फैलाये कह रही थीं—'जरा ठहरो तो, जाते कहाँ हो ?'

वृद्धा ने बालिका के सिर पर हाथ फेरकर पुचकार कहा—'जाने दे बेटी, दूसरा कोई आवेगा तो ले दूँगी।' इस खोखले ढाढ़स को जैसे बालिका ने सुना ही नहीं। वह उठी और डबडबाई आँखों से घर के भीतर चली गई।

किन्तु न जाने क्या बात थी कि आज सौदागर रामू के हृदय में उसी भोली बालिका की निराश आँखें चुभ गईं। वह, 'नहीं, करके लौटा तो, पर उसे ऐसा मालूम हुआ जैसे वह गंगा के किनारे तक जाकर बिना नहाये लौट रहा हो। उसने इस भाव को भुलाने की कोशिश की, किन्तु जाने क्यों वह स्वयं उसमें भूल गया। उस पर जाने कहाँ से चिनगारियाँ बरसने लगीं—नहीं, मैं ठीक नहीं कर रहा हूँ। उस बेचारी बच्ची के कोमल हृदय पर मैं ईंट मारकर चला आया। उसका चेहरा कैसा उतर गया था! और उसकी आँखें—उफ!—कैसे देख रही थीं! × × × नहीं,नहीं × × यह ठीक नहीं। रोजगार का मतलब यह थोड़े ही है कि मैं इस तरह बे-दिल का हो जाऊँ। क्या होता, यदि मैं एक ही पैसे में उसे दे देता तो ? × × कोई घाटे का पहाड़ तो टूट न पड़ता। न सही, एक वक्त तम्बाकू न पीता, बिना साग के खा लेता। × × बच्चों का मन तोड़ना, राम राम भगवान की मूर्ति तोड़ना है। चलूँ, दे आऊँ पर × × × × अब क्या! अब तो इतनी दूर चला आया और फिर, रामू, तुम भी पूरे बुद्धू हो। हाँ, रोजगार करने चले हो कि इन छोटी मोटी बातों पर ताना-बाना बुनने। इसमें तो यह होता ही है।

'यही हाल रहा तो कर चुके अपना काम। कोई न खरीद सके तो इसमें अपना क्या वश ? राम की मर्जी है। × ×।'

रामू ने मानो जागकर, ठीक से सिर उठाया। एक साँस के बहाने दिल में हिम्मत भरी। इतने तर्क-वितर्क पर भी उसने देखा कि काम नहीं चल रहा कुछ है जो काट-सा रहा है, जो मस्तिष्क के तर्क से अधिक बली है।

रामू ने देखा कि चुप रहने से तो विचार उमड़ते चले आते हैं। जिस चीज को वह दबाना चाहता है वह उभड़ी ही पड़ती है। इसलिए उसने सोचा कि चिल्लाकर आवाज के बहाने, अन्दरवाली चीज का उफ़ान बाहर कर दूँ। इसलिए 'पर × × × नहीं' के बाद उसने सिर ऊपर किया और साँस के बहाने दिल में हिम्मत भरते हुए कहा—'लल्ला की चि × × ×।' पर यह क्या ? उसकी आवाज बैठ सी गई थी। शब्द उसके गले में अटक रहे। गले में वह जोर ही नहीं रह गया। उसका मन बोलने को कर ही नहीं रहा था। उसकी वह शक्ति कहाँ चली गई ? वह चाहता था कि बिना बोले ही उसकी चिड़ियाँ बिक जायँ तो अच्छा। किन्तु किसी ने सामने से उसे रोककर बड़ी गम्भीर आवाज में कहा—'चले कहाँ जा रहे हो !' रामू लौट पड़ा। चाहे जो हो, वह यह न करेगा। बच्ची के खून से सींच-सींचकर वह अपना बाग नहीं लगाना चाहता था। उसके मन में टूटे हुए टुकड़ों से अपना महल उठाना उसे असह्य था। उसी दरवाजे पर पहुँचकर उसने पुकारा—'माई ले लो चिरैया।'

घर के अन्दर आवाज पहुँची तो वृद्धा ने कहा—'कौन है ?' पर बालिका की आँखें चमक उठीं। निधि को लौटी समझ वह सुख विह्वल हो गई। वह दौड़कर बाहर गई, फिर दौड़कर भीतर आई—'अरे नानी, वही, वही चिरैया-वाला है।' वह कुहुक उठी—'चल चल, जल्दी चल, मेरी नानी, ऊँ ऊँ ऊँ।' वह वृद्धा की उँगली पकड़कर खींच ले गई।

'ले लो माई, पैसे ही पैसे ले लो।'—सौदागर ने वृद्धा को देख, आँखों से बालिका पर आशीर्वाद बरसाते हुए कहा।

'लाओ, आखिर को इतना हैरान हुए, पहले ही दे देते तो !'—वृद्धा बोली।

बालिका ने झट बढ़कर एक लाल सी चिड़िया ले ली, वह खिल उठी। वह कभी हिलती हुई चिड़िया को देखती, कभी अपनी नानी को और कभी सौदागर को। उसका 'शिशु हृदय सुख की एक ही तारिका से चमक उठा।

सौदागर चिड़ियाँ पैसे ही देने को दे रहा है यह बात फैलते देर न लगी। उसका सब माल देखते ही देखते बिक गया।

घर पहुँचकर रामू ने देखा कि मूल भी नहीं मिला। दो आने का घाटा रहा और मेहनत अलग। पर उसका हृदय आनन्द से ओत प्रोत था। उसकी आत्मा खिल रही थी। मुस्कराते हुए पैसों की ओर देखकर वह कह उठा-- रामू, तुम्हारे ऐसे खुद बिकनेवालों से रोजगार न होगा, इसके लिए काठ का हृदय चाहिए।

इतने ही में उसका छोटा बालक बाहर से दौड़ता हुआ आकर लिपट गया—'बाबू गोदी × × ×' रामू ने उसे उठाकर चूम लिया। 'आज तू बड़ा अच्छा लगता है, मेरा लल्ला।--रामू ने उसे दुलारते हुए कहा। बालक गोद में और सिमट गया और रामू ने उसे फिर चूमकर हृदय से लिपटा लिया।

बालक को प्यार करके जितनी शान्ति उसे आज मिल रही थी, उतनी कभी न मिली थी।

प्रश्नावली

१ इस गल्प में किस प्रकार के परिवर्तन का दिग्दर्शन कराया गया है? क्या परिवर्तन हुआ और कैसे? रामू के मन के तर्क वितर्क को अपने शब्दों में चित्रित करो।

२ लेखक के विचार में संसार की आत्मिक शक्ति कहाँ है और वह किस रूप में प्रस्फुटित होती है?

३ इन अवतरणों का भावार्थ प्रसंग के साथ लिखिए।

(क) वह लबालब हो रहा था और भरे हुए मानस में उसकी घटना ऊपर उठकर दिख रही थी।

(ख) यह चोट थी। विना बचानेवालियों ने एक गहरी साँस भरी और मानाओं के अन्तर में, चुपके से, अनिर्वचनीय सुख दिप उठा।

(ग) उसमें निराश आशा, गूँगी-सी मुँह फैलाये, कह रही थी—जरा ठहरो तो, जाते कहाँ हो?

(घ) किन्तु किसी ने सामने से उसे रोककर बड़ी गम्भीर आवाज में कहा—चले कहाँ जा रहे हो?

४ रामू ने अपने बालक को चूमते हुए कहा—'आज तू बड़ा अच्छा लगता है ल[illegible]' बालक क्यों बहुत अच्छा लगता था?

५ [illegible] की रचनाओं के विषय में कहा जाता है कि 'वे शब्दों का [illegible] हुआ चित्र खींचते हैं, जिनमें [illegible] है।' क्या इसे सिद्ध कर सकते हो?

मौसी

श्री भुवनेश्वरप्रसाद

[१]

मानव-जीवन के विकास में एक स्थल ऐसा आता है, जब वह परिवर्तन पर भी विजय पा लेता है। जब हमारे जीवन का उत्थान या पतन, न हमारे लिए कुछ विशेषता रखता है, न दूसरों के लिए कुछ कुतूहल। जब हम केवल जीवित रहने के लिए ही जीवित रहते हैं और जब मौत आती है; पर नहीं आती।

बिब्बो जीवन की उसी 'मंजिल' में थी। मुहल्लेवाले उसे सदैव से वृद्धा ही जानते थे, मानो वह अनन्त के गर्भ से वृद्धा ही उत्पन्न होकर एक अनन्त अचिन्त्य-काल के लिए अमर हो गई थी। उसकी हाथों से बेटों की बात' नई नवेलियाँ उसका हृदय न दुखाने के लिए मान लेती थीं। उसका कभी इस विस्तृत संसार में कोई भी था, यह कल्पना का विषय था। अधिकांश के विश्वास-कोष में वह जगन्नियन्ता के समान ही एकाकी थी, पर वह कभी युवती भी थी, उसके भी नेत्रों में अमृत और विष था। झंझा की दया पर खड़ा हुआ रूखा वृक्ष भी कभी धरती का हृदय फाड़कर निकला था, बसन्त में लहलहा उठता था और हेमन्त में अपना विरही जीवन-यापन करता था, पर यह सब वह स्वयं भूल गई थी। जब हम अपनी अन्तरंग दुःखद स्मृतियाँ नष्ट करते हैं, तो स्मृति-पट से कई सुख के अवसर भी मिट जाते हैं। हाँ, जिसे वह न भूली थी उसका भतीजा—बहन का पुत्र—बसन्त था। आज भी जब वह अपनी गौओं को सानी कर कच्चे आँगन के कोने में लौकी—कुम्हड़े की बेलों को देखकर प्रकाश या अन्धकार में देखती, उसकी मूर्ति उसके सम्मुख आ जाती।

बसन्त की माता का देहान्त जन्म के दो ही महीने बाद हो गया था और पैंतीस वर्ष पूर्व उसका पिता पीले और कुम्हलाये मुख से यह समाचार और बसन्त को लेकर द्वार पर उसके सम्मुख खड़ा हो गया था। इसने आज

की बात बिन्नो स्वप्न में भी न सोचती थी। कोढी यदि अपना कोढ दूसरों से छिपाता है तो स्वयं भी उसे नहीं देख सकता—इसके बाद का जीवन उसका कलंकित अङ्ग था।

बसन्त का पिता वहीं रहने लगा। वह बिन्नो से आयु में कम था। बिन्नो, एकाकी बिन्नो ने भी सोचा, चलो क्या हर्ज है, पर वह गई और एक दिन वह और बसन्त दो ही रह गये। बसन्त का बाप उन अधिकाश मनुष्यों में था, जो अतृप्ति के लिए ही जीवित रहते हैं, जो तृप्ति का भार नहीं उठा सकते। बसन्त को उसने अपने हृदय के रक्त से पाला, पर वह पर लगते ही उड़ गया और वह फिर एकाकी रह गई। बसन्त का समाचार उसे कभी कभी मिलता था। दस वर्ष पहले वह रेल की काली वर्दी पहने आया था और अपने विवाह का निमन्त्रण दे गया, इसके पश्चात् सुना, वह किसी अभियोग में नौकरी से अलग हो गया और कहीं व्यापार करने लगा। बिन्नो कहती कि उसे इन बातों में तनिक भी रस नहीं है। वह सोचती कि आज यदि बसन्त राजा हो जाय, तो उसे हर्ष न होगा और उसे यदि कल फाँसी हो जाय, तो न शोक। और जब मुहल्लेवालों ने प्रयत्न करना चाहा कि दूध बेचकर जीवन-यापन करनेवाली मौसी को उसके भतीजे से कुछ सहायता दिलाई जाय, तो उसने घोर विरोध किया।

दिन दो घड़ी चढ चुका था, बिन्नो की दोनों बाल्टियाँ खाली हो गई थीं। वह दुघाडी का दूध आग पर चढाकर नहाने जा रही थी, कि उसके आँगन में एक अधेड पुरुष ५ वर्ष के लडके की उँगली थामे आकर खड़ा हो गया।

'अब न होगा कुछ, बारह बजे' वृद्धा ने कटु स्वर में कुछ खीनता से कहा।

'नहीं मौसी.. '

बिन्नो उसके निकट खड़ी होकर, उसके मुँह की ओर घूरकर स्वभिन्न स्वर में बोली—बसन्त!—और फिर चुप हो गई।

बसन्त ने कहा—मौसी तुम्हारे सिवा मेरे कौन है? मेरा पुत्र बे माँ का रहा! तुमने मुझे पाला है, इसे भी पाल दो, मैं सारा खर्चा दूँगा।

'भर पाया, भर पाया'—वृद्धा कम्पित स्वर में बोली।

बिब्बो को आश्चर्य था कि बसन्त अभी से बूढ़ा हो चला था और उसका पुत्र बिलकुल बसन्त के और अपने बाबा के समान था। उसने कठिन स्वर में कहा—बसन्त, तू चला जा, मुझसे कुछ न होगा। बसन्त विनय की मूर्ति हो रहा था और अपना छोटा-सा सन्दूक खोलकर मौसी को सौगातें देने लगा।

वृद्धा एक महीने पश्चात् तोड़नेवाली लौकियों को झाकती हुई बसन्त से जाने को कह रही थीं, पर उसकी आत्मा में एक विप्लव हो रहा था। उसे ऐसा भान होने लगा, जैसे वह फिर युवती हो गई। और एक दिन रात्रि की निस्तब्धता में बसन्त के पिता ने जैसे स्वप्न में उसे थोड़ा चूम-सा लिया और··· वह बसन्त को वक्ष में चिपकाकर सिसकने लगी।

हो ·····पर वह बसन्त के पुत्र की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखेगी। वह उसे कदापि नहीं रखेगी, यह निश्चय था। बसन्त निराश हो गया था, पर सवेरे जब वह बालक मन्नू को जगाकर ले जाने के लिए प्रस्तुत हुआ, बिब्बो ने उसे छीन लिया और मन्नू और दस रुपये के नोट को छोड़कर बसन्त चला गया।

[२]

बिब्बो का दूध अब न बिकता था। तीनों गायें एक के बाद एक बेंच दीं। केवल एक मन्नू की बछिया रह गई थी। कुम्हड़े और लौकी के ग्राहकों को भी अब निराश होना पड़ता। मन्नू, पीला कान्तिहीन आलसी मन्नू, सिंदूरी चञ्चल और शरारती हो रहा था और उदासीन बिब्बो लड़ाका और घर गृहस्थ।

महीने में पाँच रुपये का मनिआर्डर बसन्त भेजता था, पर एक ही साल में बिब्बो ने मकान भी बन्धक रख दिया। मन्नू की सभी इच्छाओं की पूर्ति अनिवार्य थी। बिब्बो फिर समय की गति के साथ चलने लगी। मोहल्ले में फिर उसकी आलोचना-प्रत्यालोचना प्रारम्भ हो गई। मन्नू ने उसका संसार से फिर स्वच्छन्द स्थापित कर दिया, जिसे छोड़कर वह आगे बढ़ गई थी; पर एक दिन साँझ को अकस्मात् बसन्त आ गया। उसके साथ एक स्त्री

गेहुएँ रंग की स्त्री थी, उसने बिन्नो के चरण छुए। चरण दबाये और फिर कहा—मौसी, न हो मन्नू को मुझे दे दो, मैं तुम्हारा यश मानूँगी।

वसन्त ने रोना मुँह बनाकर कहा—हाँ, किसी का जीवन संकट में डालने से तो यह अच्छा है, ऐसा जानता, तो मैं ब्याह ही क्यों करता?

मौसी ने कहा—अच्छा, उसे ले जाओ।

मन्नू दूसरे घर में खेल रहा था। वृद्धा ने काँपते हुए पैरों से दीवार पर चढ़कर बुलाया।

वह कूदता हुआ आया। नई माता ने उसे हृदय से लगा लिया। बालक कुछ न समझ सका, वह मौसी की ओर भागा।

बिन्नो ने उसे दुतकारा—जा दूर हो।

बेचारा बालक दुत्कार का अर्थ समझने में असमर्थ था। वह रो पड़ा।

वसन्त हतबुद्धि खड़ा था। बिन्नो ने मन्नू का हाथ पकड़ा, मुँह धोया और आँगन के ताख में जूते उतारकर पहना दिये।

बसन्त की स्त्री मुस्कराकर बोली—मौसी क्या एक दिन भी न रहने दोगी? अभी क्या जल्दी है। पर, बिन्नो जैसे किसी दूसरे लोक में पहुँच गई हो। जहाँ वह स्वर—संसार का कोई स्वर—न पहुँच सकता हो। पलक मारते मन्नू की खेल की, प्यार की, दुलार की सभी वस्तुएँ उसने बाँध दीं। मन्नू को भी समझा दिया कि वह सैर करने अपनी नई माँ के साथ जा रहा था।

मन्नू उछलता हुआ पिता के पास खड़ा हो गया। बिन्नो ने कुछ नोट और रुपये उसके सम्मुख लाकर डाल दिये—ले अपने रुपये।

वसन्त धर्म संकट में पड़ा था, पर उसकी अर्धांगिनी ने उसका निवारण कर दिया। उसने रुपये उठा लिये, मौसी इस समय हम असमर्थ हैं, पर जाते ही अधिक भेजने का प्रयत्न करूँगी, तुमसे हम लोग कभी उऋण नहीं हो सकते।

× × × ×

मन्नू माता-पिता के घर बहुत दिनों तक सुखी न रह सका। महीने में दो बार रोग ग्रस्त हुआ। नई माँ भी मन्नू को पाकर कुछ अधिक सुखी न हो सकी। अन्त में एक दिन रात-भर जागकर वसन्त स्त्री के रोने-धोने पर भी लेकर मौसी के घर चल दिया।

वहाँ पहुँचकर उसने देखा कि मौसी के जीर्ण द्वार पर कुछ लोग जमा हैं। बसन्त के एक्के को घेरकर उन्हों ने कहा—आपकी यह मौसी है। आज पाँच दिन से द्वार बन्द है, हम लोग आशङ्कित हैं।

द्वार तोड़कर लोगों ने देखा—वृद्धा पृथ्वी पर एक चित्र का आलिंगन किये नीचे पड़ी है, जैसे वह मरकर अपने मानव होने का प्रमाण दे रही हो।

बसत के अतिरिक्त किसी ने न जाना कि वह चित्र उसी के पिता का था, पर वह भी यह न जान सका कि वह वहाँ क्यों था!

प्रश्नावली

(१) कहानी के आरम्भ की कौन कौन सी मुख्य शैलियाँ हैं? इस कहानी का आरम्भ कैसे हुआ?

(२) इन अवतरणों का भावार्थ लिखो—

क मानव जीवन के विकास में एक स्थल ऐसा आता है जब वह परिवर्तन पर भी विजय पा लेता है।

ख इसके बाद का जीवन उसका कलंकित सा था।

ग बसन्त का पिता उन अधिकांश मनुष्यों में था जो अतृप्ति के लिए ही जीवित रहते हैं।

घ जैसे वह मरकर अपने मानव होने का प्रमाण दे रही है।

च उसका इस विस्तृत संसार में कोई भी न था, यह कल्पना का विषय था।

(३) क मुन्नू के प्रति बिन्दो के स्नेह का विकास कैसे हुआ?

ख जब बसन्त अपने पुत्र को लेने आया तो बिन्दो ने अपने किस मनोभाव का परिचय दिया।

ग बिन्दो के हृदय में मुन्नू के प्रति इतने स्नेह का क्या रहस्य था?

(४) इस कहानी में लेखक ने मानव हृदय के किस भाव की व्यंजना की है?

(५) 'जब हम अपनी [illegible] [illegible] हैं तो [illegible] दुख के ऊपर भी मिट जाते हैं'? बिन्दो के जीवन के प्रसंग में यह कथन क्यों दिया गया? इसकी व्याख्या कीजिए।

फूटा शीशा

श्री सद्गुरुशरण अवस्थी, एम० ए०

अवस्थीजी कानपुर के बी० एस० डी० कालेज के हिन्दी अध्यापक हैं। आप हिन्दी के एम० ए० हैं। आपने कई ग्रन्थों का निर्माण किया है। आपकी गद्य-गाथा तथा तुलसी के चार दल—आलोचनात्मक ग्रन्थ हैं। अमित पथिक नामक आपका उपन्यास भी छपा है। आपकी १० कहानियों का संग्रह फूटा शीशा नाम से प्रकाशित हुआ है। आपकी प्रतिभा सर्वतोमुखी है। आपको साहित्य से प्रेम है, लिखने का शौक है। हिन्दी साहित्य आपसे अभी बहुत कुछ आशा करता है। आपका स्वभाव मिलनसार, हँसमुख और परिश्रमशील है।

[१]

मेरे घर के ठीक सामने ही एक गिरे हुए भवन के भग्नावशेष को समतल करके एक पट पर बना लिया गया है। उसमें दो कुटुम्बों के दराने होते हैं। यही इनकी आजीविका का एकमात्र आश्रय है। दोनों कुटुम्बों में स्त्री राज्य है, पुरुष अनुचर हैं, अनुमोदक हैं और श्रमजीवी हैं। उनमें स्वतन्त्र आलाप की स्फूर्ति नहीं, वे केवल स्वर मिलानेवाले वाद्य-यन्त्र हैं। श्यामू की बहू अभी कठिनता से पचीस वर्ष की होगी, परन्तु घूँघट के भीतर के छोटे मुँह का छोटी जीभ बिजली के पंखे से भी अधिक गतिशील है। कालिका की नानी बुड्ढी है, परन्तु स्वर बड़ा कर्कश है। वह श्यामू की तीन पीढ़ियों का समाचार रखती है। किसी ने उसे कुछ कहा नहीं कि वह एक से एक काली चूड़ियाँ अपने मुँह के ग्रामोफोन पर चढ़ाने लगती है और सुननेवाले दंग रह जाते हैं।

जाति में ये दोनों कुटुम्ब तेली थे। पक्की ईंटों की एक पंक्ति, दो दूकानों की सीमा थी। तीसरे-चौथे दिन सूत रखकर यह सीधी की जाती थी, परन्तु वह अन्तर खिसककर कालिका की नानी का हिस्सा छोटा बना देती थी। बहुत बार झगड़ा इस जड़ सीमा की चेतन गति के कारण हुआ करता था। श्यामू की बहू ने पहले तो सड़क की ओरवाला भाग पसन्द किया, परन्तु उसके बाद दूसरा अच्छा सा जान पड़ा तो उसने इस बात पर लड़ना शुरू किया कि उसे पीछे का भाग मिलना चाहिए। दूसरा कुटुम्ब इस पर

बिलकुल तैयार न हुआ। कालिका की नानी वैसे तो गाय हाँकने के लिए उठती ही न थी, परन्तु यदि कोई देखनेवाला समक्ष पड़ गया तो इस प्रकार धीरे-धीरे 'हट, हट' करती हुई उठती, जिससे लोग उसकी सहानुभूति देख भी लें और गाय अरहर खाकर स्वत चली जाय। कभी कभी मन के शत्रु-भाव और दिखावटी सहानुभूति के बीच में पड़े हुए उसके वृद्ध शरीर की विचित्र दशा देखने में आती थी।

बड़े छप्पर की आधी फूस गिर जाने से बाँस की नसें उभर आई थीं। इसके नीचे लेटकर सम्भुआ की बहू अपने मोटे, काले बच्चे को दूध पिलाती थी और तारों की ओर टकटकी लगाकर देखा करती थी। वायु के झोंके, चन्द्र और चन्द्रिका तो कभी कभी भीतर आते ही थे, परन्तु जेठ की लपटें और घाम की ऐंठन दिन भर छप्पर के नीचे दिखाई देती थी। पानी बरसता था तो सम्भुआ की बहू तो किराये में ली हुई पासवाली कोठरी में चली जाती थी, परन्तु कालिका की नानी को बड़ा कष्ट होता। सम्भुआ की बहू हँसती, वह अपनी अरहर को मोमजामे से ढक देती और टाट के भीतर भीगनेवाली बुढ़िया की अरहर को देखकर मुसकराती। कालिका की नानी ने कई बार सोचा कि वह उस स्थान को छोड़ दे जिससे सम्भुआ की बहू को सुख मिले, परन्तु न वह स्वयं ऐसा कर सकती थी और न सम्भुआ की बहू यह चाहती थी। उसने लड़ने में सुख था। उस पर बकने और उसे दबाने में वह प्रसन्न होती थी।

सम्भुआ का काला लड़का बरम्हा कालिका की नानी से बहुत हिला था। वह भी इसको खिलाया करती और इसी के लिए घर छोड़ने में संकोच करती थी। यह बालक ही दोनों के लिए एक ऐसा अवलम्बन था, जिस पर सम्भुआ की बहू और कालिका की नानी दोनों अपने-अपने प्रेम-तन्त्र डालती थीं। दोनों के विवाद का यही एक केन्द्र बिन्दु था। सम्भुआ की बहू गाली देती और लड़ती, कालिका की नानी को कोसती और [illegible] कहती। कालिका की नानी भी उसका उत्तर उसी ढंग से देती। [illegible] वहाँ सम्भुआ और बरम्हा की मृत्यु को माँगती, परन्तु उसके नेत्र बचाकर झट बरम्हा को गोद में ले लेती और चूमकर गुड़ खिलाने लगती।

एक बार झगड़ा इस बात पर बढ़ा कि निकलने के मार्ग पर कौन झाड़ू

थी। बूढ़ा रघुबर भी उसी में कभी-कभी सिसियाता हुआ घुस जाता था। घिसी हुई कथरी के टुकड़े की उभरी हुई सीवन झुरही की नीली नसों की भाँति दिखाई देती थी। झुलसनेवाली वायु से झुरही का बड़ा परिचय था। सूर्य की प्रखर किरणों से उसकी मैत्री थी। शिशिर की कँपानेवाली हवा से उसका अनुराग था।

झुरही पति से प्रति-दिन लड़ा करती थी। अधिकतर झगड़ा खरचे के लिए होता। झुरही रघुबर के पास कई वर्षों से थी। वह अपनी सारी सम्पत्ति इसे प्रसन्न करने के लिए चरस की चिलम पर रख चुका था। मैंने सुना था कि वह बहुत अच्छा कपड़ा पहनता था और बहुत स्वच्छ रहता था। झुरही भी बहुतों के देखने की वस्तु थी, परन्तु इस दम्पति के मेल का महल नग्न स्वार्थ पर ही बना था। यदि एक दिन भी चरस में कोई ढील हुई तो झुरही ने गाली बकना आरम्भ कर दिया और रघुबर ने मारना। रघुबर को झुरही की उतनी ही आवश्यकता थी, जितनी पेट भरने के लिए दाल भात की होती है।

अब दरिद्रता की अध्यक्षता में जो कलह इस दम्पति मे होती थी, उसमें मार झुरही की ओर से और गालियाँ रघुबर की ओर से आरम्भ होती थीं। कई बार रघुबर ने उसे घर से निकल जाने की धमकी दी और वह इस प्रस्ताव से सहमत भी हो गई, परन्तु एक आध दिन के बाद वह फिर रघुबर के ही यहाँ आ जाती। एक दिन झुरही के फूटे शीशेवाली सोहाग की डिब्बी न जाने कहाँ खो गई। झुरही व्याकुल थी। उसका भाल सूना था। वह ढूँढ़ते ढूँढ़ते व्यथित हो गई। श्यामू की बहू ने समझाया, परन्तु उसका रोना बन्द न हुआ। रघुबर ने पुचकारा, परन्तु उसका क्रोध उबल उठा। दो दिनों तक वह बिना खाये पिये कथरी में मुँह छिपाये रोती रही। अन्त में जब रघुबर ने कहीं से डिब्बी को निकालकर झुरही के हाथ में दे दिया, तो उसके चेहरे में कुछ मुसकराहट दौड़ी। उसने फूटे शीशे को सामने करके अपने भाल पर कुंकुम का एक बिन्दु रख लिया। झुरही कुछ और प्रसन्न हुई, परन्तु शीघ्र ही तमककर खड़ी हो गई और कर्कश स्वर में कहने लगी—'तूने ही मेरी डिब्बी चुराकर रख ली थी।'

रघुबर ने कहा—'नहीं भाई, मैं क्या जानूँ, मुझे तो यहीं पड़ी मिली है।'

झुरही ने फिर तमककर कहा—'तू झूठा है; आज से तेरा मुँह न देखूँगी।' इतना कहती हुई वह निकलकर चल दी। पीछे भूलकर भी उसने न देखा। रघुबर समझा था एकाध दिन में ठोकर खाकर वह आ ही जायगी। परन्तु झुरही के उपवास के शरीर में क्रोध का भोजन शक्ति दे रहा था। वह कई दिन तक न आई। रघुबर ने सकरी को भुलाने का प्रयत्न किया और भूल भी गया। कभी कभी कुछ ध्यान आ जाता, परन्तु उसकी कर्कशता उस चित्र को सहसा मिटा देती।

मैंने इस विच्छेद की सारी गाथा सुनी। मुझे इस बात पर बड़ा कौतूहल था कि पति से इतनी विमुख, उसे मारने में भी संकोच न करनेवाली सकरी के लिए अपने सोहाग-चिन्ह में क्यों इतना आकर्षण है! इस रहस्य को मैं समझता न था। झुरही का मैंने कई बार पता लगाया, परन्तु कोई परिणाम न हुआ। कुंकुम लगाने के बाद वह मुझे प्रतिदिन पालागन किया करती थी। उसके सहसा चले जाने से मुझे कुछ कमी-सी दीखने लगी और झगड़े की कमी के कारण मुहाल कुछ सूना मालूम होने लगा।

[३]

एक वर्ष व्यतीत हो गया। पेंसिल की लिपि की भाँति झुरही की स्मृति भी मेरे मन में अस्पष्ट हो गई थी। मैं लखनऊ की नरही गली में घूम रहा था। अनायास एक कोने से एक शब्द सुनाई दिया—'बाबू एक पैसा!'

मेरा ध्यान उधर गया। झुरही उर्फ सकरी मुझे देखकर मुसकुरा तो दी, परन्तु लज्जित हो गई। मैंने मुसकुराते हुए कहा—'सकरी, यहाँ कहाँ! कानपुर क्यों छोड़ आई! रघुबर तुझे याद करता है। मुहाल सूना हो गया।'

सकरी के मुँह पर रङ्ग दौड़ गया। उसने पहले पालागन किया और फिर कहने लगी, 'बाबूजी मुझे बड़ा कष्ट था। आप की बड़ी कृपा है। मुझे और किसी का परवाह नहीं।'

सकरी के भाल पर कुङ्कुम दमक रहा था। मुझे उस पर बड़ी दया आई। मैंने उसे एक रुपया निकालकर दे दिया। सकरी ने उसे आदर-पूर्वक वापस कर दिया और केवल एक आना लेकर कृतकृत्य हो गई। मैंने

थोड़ा हँसकर कहा—'सकही, यह तो बता कि तू चरस अब पीती है न?'

सकही ने दाँत निकालकर थोड़ा मुसकुराते हुए कहा—'बाबू वह कैसे छूट सकती है? वह तो मरने पर ही छूटेगी।'

मैं हँस दिया। मैंने कहा—'सकही, कानपुर चलेगी?' वह कुछ न बोली। मैं चलने ही को था कि अचानक कौतूहलवश एक प्रश्न मेरे मन में उदित हुआ जो बहुत दिनों से मुझे विकल कर रहा था। मैंने पूछा—'सकही यह तो बतला कि तू रघुबर से तो प्रेम नहीं करती, परन्तु कुंकुम से तेरा इतना स्नेह क्यों है? तेरा फूटा शीशा कहाँ है?'

'बाबू यह न पूछो। फूटा शीशा और कुंकुम मेरे पास अब भी है। उससे किसी का कोई सम्बन्ध नहीं।' इतना कहते-कहते उसके मन में उन्माद दौड़ गया। वह तिलमिला-सी गई। 'बाबू, अब मैं जाती हूँ' इतना कहकर उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही बड़े वेग से हजरतगंज की ओर भागती हुई चली गई। मैं खड़ा ही रह गया।

यह मेरा अपमान न था। फूटे शीशे और कुंकुम के नाम से ही उसे कोई ऐसी गहरी ठेस का स्मरण हुआ कि सारी सजग परिस्थितियाँ विचार-बवण्डर में पड़कर किसी अज्ञात प्रदेश में लीन हो गईं। इस उन्माद के परिचय से मुझमें एक नये कौतूहल की सृष्टि हुई। कानपुर लौटकर मैंने सकही का जीवन वृत्तान्त विस्तारपूर्वक जानने का बहुत प्रयत्न किया, परन्तु कोई विशेष जानकारी प्राप्त न हो सकी। रघुबर भी कुछ न बता सका। वह केवल उसे बुरा-भला कहता रहा। उसमें सकही का समाचार सुनकर तनिक भी उत्कण्ठा जाग्रत न हुई। प्रत्युत ऐसा प्रतीत होता था कि वह इस बात से भयभीत है कि कहीं सकही कानपुर न आ जाय।

[४]

[illegible] संसार रुष्ट है और सारा संसार असंतुष्ट। प्रत्येक प्राणी को इस विश्व का भाग मिला है। कहीं दाल अधिक, कहीं भात अधिक। [illegible] में [illegible] है। इस असंतोष में सकही के इतिहास का कौतूहल बहुत महत्त्व रखता था। मैंने उसके पूर्व जीवन के सम्बन्ध में बड़ी खोज की, पर बहुत दिनों तक कोई सफलता न हुई।

एक दिन सरकार की ओर से जन सख्या की गणना हो रही थी। बेकार व्यक्तियों का एक समुदाय गणकों के पीछे घूम रहा था। रघुबर के घर में किसी ने झुरही का भी नाम लिखा दिया था। झुरही के पिता का नाम अधीन तेली लिखा था। जब निरीक्षण के दिन झुरही का कोई पता न लगा, तो गणकों और श्यामू के बहू में कुछ हॅकरा-तुकारी होने लगी। कालिका की नानी भी कुछ बड़बड़ा रही थी, मैंने ऊपर से यह विवाद सुना। मेरे बीच में पड़ने से मामला शान्त हो गया। मुझे एक नये तत्त्व का पता लगा कि झुरही अधीन की लड़की है।

अधीन तेली मुहल्ले का एक प्रसिद्ध रईस था। उसके पास लोग दो लाख सम्पत्ति का अनुमान करते थे। अपनी जाति के मदार-वृक्षों में वह एरण्डद्रुम था। उसने न जाने कितने तेलियों का मांस मदिरा छुड़ाकर उन्हें कण्ठी पहनवा दी। मदार और सैयद बाबा की मनौती के स्थान पर महावीर और बजरङ्गबली की अर्चना आरम्भ हो गई। तेलियाने भर में अधीन की बड़ी धाक थी। वह बड़ा उदार था, बड़ा पटु था। बड़े-बड़े लोगों से उसका मेल था। उसकी मृत्यु को अभी दो वर्ष भी न हुए थे। उसका वृद्ध सेवक रजना मेरे यहाँ बहुधा आया-जाया करता था, इस बार रजना आया, तो मैंने झुरही का हाल पूछा।

'बाबूजी आपको नहीं मालूम क्या?'—रजना ने कहा—'बेचारी को दुःख ही मिला।'

मैंने फिर उत्सुकता से कहा—'भाई, मुझे पूरा-पूरा हाल बतलाओ।' वह बोला—'निरते में सुनना बाबूजी, मैं अभी एक घण्टे में आऊँगा!'

मैं बड़ी अधीरता से रजना की राह देखता था। झुरही के सम्बन्ध में न जाने कितने काल्पनिक चित्र मेरी आँखों के सामने नाचने लगे। उसकी [illegible] [illegible] उसका [illegible], उसका फूटा शीशा, उसका हाथ फैलाकर [illegible] [illegible] [illegible]। वृद्धावस्था के उसके कष्ट और लाचारी की भी कल्पना मूर्तिमान हुई। [illegible] [illegible] झिलमिलाती हुई ज्योति भी मेरी आँखों के [illegible] होने लगी। इतने में रजना आ गया।

'[illegible] बाबू, बैठे हो?'

'हाँ भाई, सुनाओ। बड़ी अधीरता है।' रजना टाट पर बैठ गया। तमाखू पर दो हाथ फटाफट मारकर रजना ने कथा आरम्भ की। लगभग एक घण्टे में उसने सारी कथा समाप्त कर दी। मेरे चित्त में विचित्र कुतूहल था, सहानुभूति थी, करुणा थी और झुरही के लिए असीम अनुकम्पा थी। तीन दिनों के पश्चात् मुझे लखनऊ जाने का अवसर फिर मिला। मैंने झुरही का बहुत अन्वेषण किया परन्तु कोई निश्चित पता न लगा। एक दिन ताँगे पर मैं गणेशगंज जा रहा था कि एक पतली औरत दौड़ती हुई दिखाई दी। कई बालक उसके पीछे थे। मैंने झुरही को पहचान लिया और बुलाया। वह रुकी और कुछ बड़बड़ाती हुई बैठ गई। मुझे वह बिल्कुल न पहचान सकी। उसके विचार विधान के तन्तु किसी विशेष झटके से उलझ गये थे। वह बीच सड़क पर बैठ गई। धीरे से सिन्दूर की डिबिया निकाली। फूटा शीशा लेकर तर्जनी से एक बिन्दु अपनी दो मोटी-मोटी भौंहों के बीच में रखा और झट से डिबिया छिपाकर भागी। मैंने ताँगे को छोड़ दिया और झुरही के पीछे चल दिया। थोड़ी देर में वह एक अत्यन्त प्राचीन विशाल महल के गिरे हुए एक कोठे में घुस गई। वह किसी धनी का किसी समय का विशाल प्रासाद था, जो चमगीदड़ों और कपोतों के लिए रिक्त कर दिया गया था।

इस लम्बी मंजिल में कई भिक्षुक रहते थे। टूटे-फूटे प्रासादों को बड़े लोग कलंक समझकर जब परित्याग कर देते हैं तो कंगालों के भाग्य खुलते हैं। धनिक का बालक जितनी ही अधिक संख्या में अपनी पाठ्य पुस्तकें पुरानी करता है, उतना ही दरिद्र विद्यार्थियों को लाभ होता है।

बड़ी देर तक मैं बाहर खड़ा रहा। झुरही निकली नहीं। मैं उसकी कोठरी में घुसा। एक कोने में बैठी वह कुछ बड़बड़ा रही थी। निकट ही रोटियों के बासी टुकड़े पड़े थे। मैंने कई बार 'झुरही' 'झुरही' कहा। उसने मुझे देखा और नेत्र नीचे कर लिये। फिर बड़बड़ाने लगी। वह जो कुछ बक रही थी, वह न कोई गाना था और न बोली। मैं समझ गया कि झुरही मुझे पहचान नहीं सकी। उसकी विक्षिप्तता सीमा तक पहुँच गई है।

[illegible], कुछ [illegible] होकर मैं वहाँ चल दिया।

लखनऊ में मैं मुन्शी राजाराम, मुंसिफ के यहाँ ठहरा था। उनका मुझसे
राना परिचय था। मुझे अन्यमनस्क देखकर वह हँसी उड़ाने लगे। मुझे
हाँ की कुछ चरचा करनी पड़ी और पूरा वृत्तांत सायंकाल के लिए स्थ-
त कर दिया गया। शाम भी आई। प्रसंग छिड़ा। मैंने उसकी कथा
रम्भ की—

'तुम्हें यह तो मालूम ही है कि कानपुर में मेरे घर के आस पास दराना
ता है और तेली रहते हैं। इन तेलियों में अधीन नाम का एक प्रसिद्ध
निक तेली रहता था। मुनिया नाम की उसकी एक सुन्दरी कन्या थी। वह
थी कक्षा तक पढ़ी थी। अधीन बड़ा सुधारक था, अतएव वह अपनी
न्या का किसी अच्छे घर में विवाह करना चाहता था। मुनिया बेले की
ति कोमल, किसलय की भाँति सुकुमार और फूल की भाँति सुगन्धित थी।
धीन के कुछ निजी विचार कन्या के विवाह के सम्बन्ध में थे। उसने उन्हें
सी तर्क अथवा विवेक पर स्थिर न किया था। वह पढ़ा लिखा भी कम था।
क्ष्मी की एकांगी उपासना के कारण सरस्वती की आराधना का उसे तनिक-
सा अवकाश न था। उसे जो कुछ भी व्यावहारिक कुशलता थी, वह सत्संग
के कारण। उसके सिद्धान्त सामाजिक रूढ़ियों से प्रसूत केवल परिवर्तन मात्र
। जब तेलियों में अच्छा वर न मिला तो इस सत्रह वर्ष की कन्या को
धीन ने छत्तीस वर्ष के एक तेली जमींदार के साथ ब्याह दिया। इस
मींदार का नाम विनोद था। थोड़ा बहुत पढ़ा भी था। हृदय में स्नेह था
र भावनाओं में नियन्त्रण। सुजनपुरवा में इसकी सत्ता थी। पुराने जमींद

गई, शीशा फूट गया। मुनिया ने झट उसे उठाकर बन्द करके अपने निकट रख लिया।

राजाराम बड़ी अधीरता से झुरही का वृत्तान्त सुन रहे थे। कथामार्ग का आगामी पोत आर्द्र था, अतएव उँगलियाँ फिसल गईं। वाणी रुकी, ठिठकी और मैं सहसा रुक गया। 'हाँ' तो क्या हुआ?'—राजाराम ने कहा।

मैंने साहस-पूर्वक फिर कहना आरम्भ किया—'इतने ही क्षणिक साक्षात् से इस दम्पति में अपार प्रेम दौड़ गया। मुनिया के नेत्र हँसते थे। विनोद ने मुनिया की ठोड़ी को हाथ से पकड़ा। कपोलों पर सुन्दर रंगों का आना-जाना प्रारम्भ हो गया, प्रेम और लज्जा बारी-बारी दिखाई देने लगे। आधी स्वीकृति में आधी अस्वीकृति उलझी हुई थी।

'नीचे बन्दूक का शब्द सुनाई दिया। शृंगाररस के स्वप्न को तोड़कर दम्पति खड़े हो गये, तुरन्त धड़ाधड़ के शब्द ने घर को आक्रान्त कर लिया। 'डाकू! डाकू!!'—यह शब्द सुनाई दिया। विनोद ने घबराकर किवाड़ खोल दिये। मुनिया सिकुड़कर बैठ गई। डाके का घमासान कई घण्टे रहा। विनोद ने लक्ष्मी की रक्षा में प्राण खोये। मुनिया के आभूषण शीघ्रता में न उतर सके। हनुमान पर्वत समेत सञ्जीवनी बूटी उठा ले गये। शृंगार पर करुणा का रस पुत गया।'

राजाराम के आँसू छलछला आये। मेरा भी कण्ठ रुँध गया। 'बड़ी कारुणिक गाथा है' राजाराम ने साँस खींचकर कहा 'फिर क्या हुआ? मुनिया सकही कैसे हो गई?'

मैंने कथा फिर आरम्भ की। राजाराम ध्यान से सुनने लगे।

'इस आपत्ति में भी मुनिया ने फूटे शीशेवाली सिंदूर की डिब्बी तो [illegible] में भगवत् नाम की भाँति न छोड़ा। चतुर्दशा के युगों में मसली हुई अनाथा [illegible] एक कली की भाँति मार्ग के एक कोने पर निःसंज्ञ पड़ी हुई मुनिया [illegible] को मिली। वह तुरन्त अस्पताल भेजी गई। उसकी [illegible] [illegible] की निजी कहानी थी। आततायियों ने उसे सभी प्रकार से नष्ट किया [illegible]। और अनन्त अवस्था में [illegible] छोड़कर चले गये थे। अस्पताल में [illegible] निकली, परन्तु उसके [illegible]

थे। इधर देवर ने ठाकुरों के घर रही हुई भावज को घर में आने देना ठीक न समझा, उधर पिता इस प्रयत्न में थे कि किसी प्रकार मुनिया रतनपुरवा ही में रहे। दोनों ओर के द्वार जब झटके से आवृत हो गये तो मुनिया ने उसी द्वार पर धरना देना अधिक उचित समझा, जहाँ पर इतने दिनों तक पली थी। उसे विश्वास था कि उसके माता, पिता, भाई, ताऊ इत्यादि उसके लिए सजीव हृदय रखते हैं। परन्तु उसे धोखा हुआ! समाज के भय ने वात्सल्य प्रेम को अछूत की भाँति बहिष्कृत कर दिया था।

'तीन दिन तक निरन्तर रोती हुई मुनिया अधीन के द्वार पर पड़ी रही। फूटे शीशे को सामने लेकर वह कुंकुम का बिन्दु प्रतिदिन अंकित कर लेती थी। दूर से भोजन दिया जाता था। एक दिन वह ग्लानि से भरकर चुपके से निकल गई। अधीन ने सपरिवार आश्वासन की साँस ली। कई दिनों के बाद सुना गया कि मुनिया रघुवर तेली के घर बैठ गई है। उसकी स्त्री अभी-अभी मरी थी। उसने इसे अच्छा भोजन और नये वस्त्र दिए। इसने उसकी भूख को शान्त किया। रघुवर के बहुत से दुर्गुणों में चरस को मुनिया ने अपनाया और मुनिया के अवगुणों में गन्दगी को रघुवर ने स्वीकार किया। इस दम्पति का सम्बन्ध बहुत बड़े सुदृढ़ स्वार्थ पर अवलम्बित था। मुनिया का रघुवर में स्वार्थ पहिले तो भोजन और वस्त्रों का था और फिर चरस के पैसों का रह गया। रघुवर का स्वार्थ मुनिया से पहिले इतना ही था जितना कि एक बलीवर्द का स्वार्थ उस अन्न दीवार से होता है जिसके स्पर्श से वह अपनी खुजली मिटाता है। आगे चलकर वह स्वार्थ सिमटकर केवल इस अभिमान से लिपट गया कि अधीन की लड़की को उसने रखा है। अन्त तक मुनिया उसके सिर का बोझ हो गई और वह उससे छुटकारा पाने का ही फिर इच्छुक था।

से भाग आई। उस बार जब मैं लखनऊ आया था तो उसने मुझे पालागन किया था। अबकी बार वह नितान्त विक्षिप्त हो गई है। मुझे पहचानती नहीं। अब भी वह सेन्दुर का टीका फूटे शीशे के सहारे लगाना नहीं भूली है।'

मुनिया की कथा सुनकर राजाराम ने एक आह भरी और कहा—'उसे इस फूटे शीशे से कदाचित् इसलिए स्नेह है कि विनोद ने अपने हाथ से उसके सेंदुर-बिन्दु लगाया था।'

'मेरा भी यही ख्याल है।'—मैंने उत्तर दिया।

'भाई, झुरही को देखना चाहिए।'

'अवश्य, कल चलूँगा। मुझे तो झुरही की गाथा बहुत दर्द-भरी प्रतीत होती है।'

'मुझसे तो आज खाया न जायगा।' कुछ देर तक दोनों चुप हो रहे। निश्चय हुआ कि कल हम लोग झुरही को देखने प्रातःकाल ही जायँगे।

रात्रि को मुझे कई बार स्वप्न में पगली झुरही के दर्शन हुए। वह फूटे शीशे को सामने रखकर कुंकुम बिन्दु लगा रही थी। राजाराम ने भी इसी प्रकार का स्वप्न देखा। प्रातःकाल झुरही के दर्शनों का उतावलापन हम लोगों को व्यग्र करने लगा। हम लोग शीघ्र ही ललामंजिल पहुँचे।

मंजिल से थोड़ी दूर पर एक भीड़ दिखाई दी। बड़ा समारोह था। हम लोग ताँगे से उतरकर सीधे ललामंजिल की टूटी कोठरी में प्रवेश करने लगे जिसमें झुरही रहती थी, आज सारा मंजिल सूना था। एक कोने में अन्धा और लूला भिक्षुक पड़ा था। उससे ज्ञात हुआ कि एक भिखारिन मोटर से दब गई है। वहीं सब भिक्षुक भागकर गये हैं। हम लोग आशंका से सिहर उठे। वेग से पैर उठाते हुए जनसमुदाय को चीरकर आगे बढ़े। एक स्त्री रक्त से लथपथ पड़ी थी। सिर फट गया था। पसलियाँ पिस गई थीं। हाथ छाती पर रखा था। [illegible] सेंदुर की डिबिया थी। [illegible] में पकड़े था। टूटा शीशा उसी के भीतर था।

'क्या झुरही है?'—राजाराम ने पूछा। [illegible]

[illegible]